DDCE Utkal University

हिंदी (एम.ए.)

M.A. (Hindi)

Semester - IV

PAPER - XIX

भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धांत

लेखक

डॉ. लक्ष्मीधर दाश

Certified that Syllabus & Courses of Study have been prepared According to the UGC guidelines

DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

Semester - IV

PAPER - XIX

भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धांत

लेखक
डॉ. लक्ष्मीधर दाश

DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

PAPER - XIX

Semester - IV

COURSES OF STUDY

भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धांत

Unit - I

Unit - II

Unit - III

अंक विभाजन :

तीन	आलोचनात्मक प्रश्न	12×3 = 36
तीन	लघूत्तरी प्रश्न	8×3 = 24
दो	टिप्पणी मूलक प्रश्न	5 × 2 = 10

कुल	= 70
सत्रीय कार्य	= 30
कुल अंक	100

पाठ्यक्रम

भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धांत

UNIT - I

1. उद्देश्य

1.1 भाषा की परिभाषा

1.2 भाषा की विशेषताएँ

1.3 भाषा के विकास के कारण

1.4 भाषा की प्रकृति

1.5 भाषा के पक्ष

1.6 भाषा के विविध रूप

1.7 भाषा और बोली

UNIT - II

2. हिंदी के विविध रूप

2.1 राजभाषा

2.2 राष्ट्रभाषा

2.3 संचार भाषा

2.0 उद्देश्य

2.1 ध्वनि विज्ञान

2.2 वाग्यंत्र

2.3 भाषिक ध्वनियाँ : स्वर

2.4 मान स्वर और गौण मान स्वर

2.5 सुंयक्त स्वर

2.6 व्यंजन

2.6.1 उच्चारण के स्थान पर

2.6.2 उच्चारण के आधार पर

2.7 आई. पी. ए. चार्ट

आई. पी. ए. चार्ट (हिंदी संस्करण)

2.8. खंडेतर ध्वनियाँ

UNIT - III 3.0 उद्देश्य

3.1 विभिन्न दृष्टियों से वाक्य

3.2 वाक्य -रचना -प्रक्रिया

3.3 क्रिया की प्रधानता की दृष्टि से वाक्य

3.4 संरचनात्मक इकाई के रूप में वाक्य

3.5 अर्थ की दृष्टि से वाक्य के भेद

3.6 प्रकार्य की दृष्टि से वाक्य

3.7 वाक्य -परिवर्तन

3.8 अर्थ विज्ञान : अर्थ की अवधारणा

3.9 शब्द और अर्थ का संबंध

3.10 एकार्थक ाब्द

3.11 अनेकार्थक शब्द

3.12 विलोम शब्द

3.13 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

Unit - I

1. उद्देश्य

1.1 भाषा, भाषा की परिभाषा

1.2 भाषा की विशेषताएँ

1.3 भाषा के विकास के कारण

1.4 भाषा की प्रकृति

1.5 भाषा के पक्ष

1.6 भाषा के विविध रूप

1.7 भाषा और बोली

Unit - I

भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धांत

1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

* भाषा के बारे में सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
* भाषा की विभिन्न दृष्टियों से परिभाषाओं को जान सकेंगे ।
* भाषा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।
* भाषा विकास के विभिन्न कारणों को जान सकेंगे ।
* भाषा की प्रकृति और इसके पक्षों से परिचित हो सकेंगे ।
* भाषा के विविध रूपों को जान सकेंगे ।
* भाषा और बोली में पाई जाने वाले अंश को पहचान सकेंगे ।

1.1 भाषा :

हम सामान्यत: भाव की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त विविन्न साधनों को भाषा कहते हैं ।

इस अर्थ में पशु-पक्षियों की बोली भी भाषा है । मधुमक्खी मधु की उपलब्धि की दूरता बताने के लिए सूर्य को केंद्र बनाकर बड़े वृत्त में और निकटता बनाने के लिए छोटे वृत्त में चक्कर काटता है । कुत्ता, बिल्ली आदि विभिन्न प्रकार के स्वर निकालकर प्रेम, क्रोध और भय को प्रकट करते हैं । वे केवल सीमित स्थिति में सीमित भावों को परंपरा से सीखकर व्यक्त करते हैं ।

मनुष्य शारीरिक चेष्टाओं द्वारा भी भाव व्यक्त कर सकता है । हाथ हिलाकर बुलाना या मना करना, आँख के इशारे से क्रोध या प्रेम प्रकट करना, सिर को नीचा करके स्वीकृति और दाएँ -बाएँ हिलाकर अस्वीकृति देना तो संभव है । पर ये सूक्ष्म और अमूर्त्त भावों को व्यक्त नहीं कर सकते । इनका क्षेत्र भी सीमित है ।

मनुष्य विभिन्न संकेतों के माध्यम से भाव भी व्यक्त कर सकता है । दरवाजा खोलने के लिए दरवाजे पर ठकठक करके, पानी के लिए गिलास हिलाकर भाव प्रकट किया जा सकता है । चौराहे पर लाल बत्ती और हरी बत्ती रुकने और जाने का संकेत देती है ।

ये संकेत स्वयं शक्तिमान नहीं होते । इन पर शक्ति का आरोप किया जाता है । संकेत संदर्भ से शक्ति प्राप्त करता है । इस दृष्टि से चौराहे की लालबत्ती और पूजा स्थल भी लाल बत्ती के अर्थ में अंतर है । बस के कडंक्टर की सीटी और शिशु की सीटी भिन्न अर्थ द्योतक हैं ।

संकेत दृश्य अथवा श्रव्य हो सकता है । इसके लिए संकेत दाता और संकेत ग्रहीता - दोनों की उपस्थिति अनिवार्य है ।

ये सभी भाषा के गौण रूप हैं । इनके माध्यम से सीमित भाषा को व्यक्त किया जा है । ये संपूर्ण अनिश्चित और अस्पष्ट भी होते हैं । इनके माध्यम से गंभीर और अमूर्त बातों को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है ।

वागेन्द्रीय से उच्चरित जिन ध्वनि संकेतों की सहायता से मनुष्य अपने भावों और विचारों को व्यक्त कर सकता है, वही वास्तव में भाषा है । यही भाषा का मुख्य रूप है । ध्वनि संकेतों की भाषा के माध्यम से सारे भावों और विचारों को पूर्णता और स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया जा सकता है । भाषा शब्द भाष् धातु से उत्पन्न हुआ है । जिसका अर्थ है - व्यक्त वाणी । भाषा मनुष्य का ईश्वरीय वरदान है । भाषा के कारण मनुष्य सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ जीव बन गया है ।

वागिन्द्रिय से असीमित ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं । उनमें से कुछ ध्वनियों को कोई भाषा ग्रहण करती है और उन पर एक व्यवस्था का आरोप करती है । भाषिक ध्वनियाँ भाषा -व्यवस्था के अंतर्गत आती हैं । उनके उच्चारण के लिए निश्चित स्थान और प्रयत्न रहता है । डॉक्टर के सामने मुँह खोलते समय रोगी जब पीड़ा सूचक 'आ' कहता है तब वह सामान्य ध्वनि कहलाती है । जब एक भाषा में 'आ' आने का आदेश व्यक्त करता है तब वह उस भाषा की भाषिक ध्वनि कहलाती है ।

भाषा की परिभाषा :

भाषा यादृच्छिक ध्वनि -प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके सहारे कोई सामाजिक समुदाय परस्पर सहयोग करता है ।

(A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group Co-operates.)

भाषा वाक् ध्वनियों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति है ।

(Language may be defined as the expression of thought by means of speech - sounds.Henry Sweet- History of Language)

विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ध्वनि -प्रतीकों के प्रयोग को भाषा कहते हैं ।

(The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for expression of thought .(A H Gardiner/ Speech and Language.)

विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को स्वेच्छा से उत्पन्न प्रतीकों के माध्यम से संप्रेषिता करने की विशुद्ध मानवीय और यत्नज पद्धति को भाषा कहते हैं । उच्चारण -अवयवों से उत्पन्न माध्यम-प्रतीक प्राथमिकत : श्रावणिक होते हैं ।

(Language is purely human and non I stictive method of communication ideas,imotions and desires by means of a system of voluntarily produced symbols.These symbols are , in the first instance , auditory and they are produced by the so-called organs of speech.

Edward Sapir, Language)

भाषा का सारतत्व यह है कि वह एक मानवीय सक्रियता है मनुष्य -मनुष्य के बीच पारस्परिक बोध के लिए एक सक्रियता, ताकि वक्ता के मन की बात को श्रोता समझ सके ।

(The essence of language is human activity - activity on the part of an individual to make himself understood by another and activity on the part of that other to understand what was in the mind of the first

Jesperson Otto , Philosophy of Grammar)

भाषा ऐसे परंपरागत चिन्हों की भाषा है । जिन्हें स्वेच्छता से मनुष्य कभी भी उत्पन्न कर सकता है ।

(language is a system of conventional signs that can be voluntarily produced at any time.) Ebbin Gaus

भाषा सीमित ध्वनियों से संयोजित व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य अभिव्यक्ति होता है ।

(Language is articulated limited sound organised sond for the purpose of expression.) Croce- Aesthetics

अपने व्यापक अर्थ में भाषा के अंतर्गत ऐसे ध्वनिप्रतीकों का पूर्ण योग आता है, जिनके द्वारा हम अपने विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त कर सकते हैं, तथा जिन्हें स्वेच्छानुसार उत्पन्न किया और दोहराया जा सकता है ।

(Language in its widest sense means the sum-total of such signs of our thoughts and feelings as are capable of external perception and as could be produced and repeted at will.) P D Gune, An Introduction to comparative Philology

मनुष्य मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं ।

डॉ. श्यमा सुन्दर दास :- भाषा विज्ञान :

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है ।

'' आचार्य कामता प्रसाद गुरु प्रस्तावना, हिन्दी व्यकरण ''

जिन ध्वनि चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार -विनियम करता है, उसको समाष्टि रूप से भाषा कहते हैं ।

डॉ. बाबूराम सक्देना : सामान्य भाषा विज्ञान

जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनिमय या सहयोग करता है, उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनि - संकेत- प्रणाली को भाषा कहते हैं ।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा : - भाषाविज्ञान की भूमिका

भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा -समाज के लोग आपस में विचारों का आदाम -प्रदान करते हैं ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान

1.2 भाषा की विशेषताएँ :

1. भाषा मानव मुखोच्चरित होती है :- भाषा मूलत: मुख से उच्चारित होती है । इसकी ध्वनियों के उच्चारण के लिए निश्चित स्थान और प्रयत्न होता है । भाषा का लिखित रूप लिपि-प्रतीकों द्वारा नियंत्रित होता है । भाषा की सीमित ध्वनियों से असीमित विचार व्यक्त हो सकते हैं ।

2. भाषा की विशेषताएँ : - भाषा यादृच्छिक ध्वनि -प्रतीकों की व्यवस्था है । किसी एक वस्तु के लिए प्रत्येक भाषा में समान ध्वनि प्रतीक नहीं होते । अंग्रेजी में (Tree), हिन्दी में पेड़ है । इस शब्द के लिए दोनों भाषाओं के ध्वनि प्रतीक अलग-अलग हैं । वस्तु और ध्वनि प्रतीकों का संबंध

किसी भाषा समाज के द्वारा निश्चित और स्वीकृत होता है । किसी भी भाषा में ध्वनि या ध्वनि -समूह से बना शब्द विशेष अर्थ का वाचक होकर परंपरा से पूर्णत: यादृच्छिक (ऐच्छिक) रूप से प्रयुक्त होता है । इसलिए दूसरी भाषा में उस वस्तु के लिए भिन्न शब्द उपलब्ध होता है ।

3. भाषा में दो मूलभूत इकाइयाँ होती हैं :- प्रत्येक भाषा में दो मूलभूत इकाइयाँ हैं - ध्वनि और शब्द । ध्वनि भाषा की न्यूनतम इकाई है । ध्वनि या ध्वनियाँ से बनी बड़ी इकाई को शब्द कहते हैं । यह भाषा की न्यूनतम सार्थक इकाई है । हिन्दी भाषा में फ्, अ, ल, ध्वनियाँ अलग -अलग आने से कोई अर्थ व्यक्त नहीं कर सकतीं । पर ये तीनों ध्वनियाँएक साथ आकर 'फल' शब्द बनाती हैं । 'फल' सार्थक शब्द होता है ।

4. भाषा एक व्यवस्था है :- भाषा में चार व्यवस्थाएँ होती हैं । स्वन व्यवस्था, रूप व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था और व्याकरण व्यवस्था । भाषा में शब्द के लिए ध्वनियों का और वाक्य के लिए पदों का एक निश्चित क्रम होता है, जो उस समाज के द्वारा स्वीकृत हो । वक्ता अपने अनुभव - क्षेत्र से बाहर के लिए ध्वनि -क्रम या शब्द क्रम को स्वीकार नहीं कर सकता । उसके लिए म्, ल् , अ, क, ध्वनि क्रम से कोई सार्थक शब्द (रूप) नहीं बनता । हरी घास की जगह, पीली घास और पत्थर जलती है, उसके लिए निार्थक है । वाक्य में शब्द बदल जाने से अर्थ भी बदल जाता है । हिन्दी में वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया का क्रम रहता है । भाषा में व्याकरण व्यवस्था होती है, जो भाषा को नियंत्रित, व्यवस्थित और सुसंबद्ध करती है । इसलिए किसी भाषा का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन और विश्लेषण किया जा सकता है ।

5. भाषा सामाजिक संपत्ति है :- एक व्यक्ति भाषा का व्यवहार करके अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है । वक्ता जो संदेश देना चाहता है श्रोता यदि वही संदेश ग्रहण करता है तब भाषा का संप्रेषण कार्य सफल होता है । पारस्परिक बोधगम्य होना भाषा की अनिवार्यता है । ये वक्ता और श्रोता एक भाषा समाज के सदस्य होते हैं । भाषा इस भाषायी समाज की संपत्ति होती है । भाषा किसी एक व्यक्ति की संपत्ति नहीं हो सकती । बालक समाज से ही भाषा सीखता है । वह व्यक्ति अपनी इच्छानुसार भाषा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता । वह भाषा को भी अपने तक सीमित नहीं रख सकता । जब भाषा को बोलने वाला पूरा समाज परिवर्तन को स्वीकार करता है, तब भाषा में परिवर्तन होता है । भाषा अपने प्रयोक्ता को एकत्र करती है । बाह्य जगत से उनको संबद्ध करती है । वह सामाजिक क्रिया - कलापों को नियंत्रित करती है । वह उन भाषायी समाज की संस्कृति को वहन करने के साथ -साथ सामाजिक जीवन के प्रत्येक अंग को वहन करती है ।

6. भाषा परिवर्तनशील है :- दूसरी वस्तुओं की भाँति भाषा में परिवर्तन का क्रम अनिवार्य है । यह परिवर्तन भाषा की ध्वनि, शब्द, व्याकरण और अर्थ आदि में परिलक्षित हो सकता

है । किसी भाषा-समाज के लोग अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनैतिक आदि कारणों से आवश्यकतानुसार नवीन शब्द बनाते हैं या दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करके नवीन भावों और विचारों को अभिव्यक्त करते हैं । इससे भाषा की शब्द-संपदा काफी बढ़ती है और भाषा समर्थ होती है ।

कभी-कभी सामान्य वर्ग के लोगों को एक मानक भाषा के शुद्ध उच्चारण करने और उसे समझने में कठिनाई उत्पन्न होती है । तब वे उसमें कुछ परिवर्तन कर देते हैं । वही परिवर्तन बाद में दिशाल रूप लेता है और एक नई भाषा को जन्म देता है । इसी प्रकार संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिन्दी के विकास की प्रक्रिया पाई जाती है ।

7. भाषा का प्रवाह अविच्छिन्न है :- भाषा की धारा सतत प्रवहमान होती है । समाज में ही भाषा की गतिशीलता बनी रहती है । जब तक मानव समाज रहेगा, उसके साथ उसकी भाषा भी रहेगी । व्यक्ति -विशेष चाहने पर भी किसी भाषा में परिवर्तन नहीं कर सकेगा, बना भी नहीं सकेगा, मिटा भी नहीं सकेगा । भाषा कालातीत होती है । किसी उक्ति का प्रभाव क्षेत्र काल-विशेष तक सीमित नहीं होता, उसका प्रभाव और महत्व चिरकालिक होता है । देशकाल भेद से भाषा का रूपांतरण मात्र होता है ।

8. भाषा में उत्पादन क्षमता होती है :-भाषा की उत्पादन - क्षमता या सर्जनात्मक क्षमता का अर्थ है कि हम परिमित ध्वनियों की सहायता से परिमित वाक्य निर्माण कर सकते हैं, और उन्हें समझ सकते हैं । यह कार्य भी हम सहजता से और बिना किसी चिंतन से कर सकते हैं । हम ऐसा नवीन वाक्य भी बना सकते हैं , जिसे हमने न कभी पढ़ा हो, न कभी सुना हो ।

9. भाषा में व्यतिहारिता का गुण है :-व्यतिहारिता का अर्थ है 'संदेश' प्रेषक और संदेश प्रषिती के कार्य की अदला-बदली हो सकती है । अर्थात् एक व्यक्ति संदेश भेज सकता है और उसे प्राप्त भी कर सकता है । कुछ मनुष्येतर प्राणियों की बोलियाँ लिंग के आधार पर अलग=अलग हो सकती हैं, पर मानवीय भाषा में प्रयोक्ता पुरुष हो या स्त्री, व्यतिहारिता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

10. भाषा अर्जित वस्तु है :- मनुष्य में भाषा सीखने की नैसर्गिक शक्ति है । वह प्रयासपूर्वक कोई भी भाषा सीख सकता है । सहज स्वाभाविक परिवेश में बच्चा समाज से अनुसरण द्वारा भाषा सीख जाता है । किसी भाषा-विशेष का ज्ञान लेकर वह जन्म नहीं होता । एक हिन्दी भाषी बच्चा दूसरे भाषा -क्षेत्र में जाकर रहता है तो वह उसी दक्षता से नई भाषा सीख जाता है, जिस दक्षता से मूल भाषा-भाषी भाषा सीखते हैं । भाषा का व्यवहार जितना अधिक होगा भाषायी क्षमता उतनी दृढ़ होगी ।

11. भाषा सामाजिक दृष्टि से स्तरित होती है :- भाषा के सभी प्रयोक्ताओं का सामाजिक स्तर, सांस्कृतिक स्तर, शैक्षिक स्तर, आर्थिक स्तर और व्यवसाय का स्तर एक जैसा नहीं होता । सभी लोग सभी शब्दों पर अधिकार नहीं रखते या व्याकरण का संपूर्ण ज्ञान नहीं रखते । वे अपने - अपने स्तर के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं । एक मजदूर की भाषा और एक दार्शनिक की भाषा में अंतर आएगा । विभिन्न पेशों में प्रयुक्त होने वाले शब्द भी अलग-अलग हैं । इसलिए एक वकील की भाषा और एक किसान की भाषा में अंतर रहता है । एक भाषा -भाषी दो व्यक्ति स्थान-भेद से भी भिन्न -भिन्न शब्दों तथा शैलियों का प्रयोग करते हैं ।

12. भाषा स्थिरीकरण से प्रभावित होती है :- भाषा में सदा दो विरोधी प्रवृत्तियाँ काम करती है -

1) केन्दाभिगामी । 2) केन्द्रापगामी ।

केन्द्राभिगामी प्रवृत्ति भाषा के परिवर्तन की गति को रोकती है । स्थिरता रखती है । भाषा को परिष्कृत और सुरक्षित रखती है । भाषा मानक होती है । केन्द्रापगामी प्रवृत्ति भाषा में परिवर्तन लाती है । नव-जीवन का संचार करती है । भाषा में इन दो परस्पर विरोधियों में संघर्ष चलता रहता है । भाषा में स्थिरता रहना सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है । परंपराप्राप्त साहित्य, केन्द्रीय शासन, शिक्षा का माध्यम समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि साधन भाषा की स्थिरता बनाए रखने में मदद करते हैं ।

13. भाषा स्वभावत: स्वतंत्र होती है :- भाषा पहाड़ी नदी की तरह बहना चाहती है । स्वतंत्र रहना उसका स्वभाव है । पहाड़ी नदी का गतिरोध होने से वह उस बाधा को तोड़ कर आगे बढ़ जाती है । उसी प्रकार भाषा के प्रवाह में साहित्यिक भाषा और व्याकरण बद्धता के नाम पर यदि गतिरोध उत्पन्न कर दिया जाता है तो वह सभी बाधाओं को तोड़कर एक अलग जनभाषा के रूप में विकसित हो जाती है । इसलिए प्रत्येक भाषा में दो रूप उपलब्ध होते हैं -

1) साहित्यिक भाषा रूप । 2) जनभाषा रूप ।

14.. प्रत्येक भाषा की संचरना अलग होती है :- प्रत्येक भाषा ध्वनि, शब्दावली, उच्चारण, शब्द रूप, धातुरूप, वाक्य -संरचना, व्याकरण की दृष्टि से दूसरी भाषा से भिन्न होती है । संस्कृत में लिंग -वचन तीन-तीन हैं, जब कि हिन्दी में दो-दो हैं । ग्रीक में 'च' ध्वनि नहीं होती । रूसी में 'ह' ध्वनि नहीं है । तमिल महाप्राणत्व नहीं है । हिन्दी में ये हैं ।

15. भाषा संप्रेषण का मौखिक साधन है :- भाषा के द्वारा संप्रेषण कार्य पूरा होता है । भाषा के दो रूप है -

1) मोखिक , 2) लिखित ।

प्रत्येक भाषा में मौखिक रूप उपलब्ध है । अविकसित भाषा का लिखित रूप नहीं होता । भाषा का मौखिक रूप विकसित नहीं होने के बाद लिखित रूप विकसित होता है । उच्चारित भाषा में स्वर के आरोप - अवरोह, काकु, बलाघात आदि द्वारा भाव जितनी स्पष्टता से व्यक्त किये जा सकते हैं लिखित भाषा द्वारा ऐसा संभव नहीं है । केवल पाठक को भाषा पर विभिन्न भंगिमाओं को आरोपित करके पढ़ना पड़ता है । मौखिक भाषा सप्राण है । उसका संबंध समाज की समकालीन पीढ़ी से है, जबकि लिखित भाषा का संबंध भूत, भविष्य और समकालीन वर्तमान पीढ़ी से होता है ।

1.3 भाषा के विकास के कारण :

परिवर्तन सृष्टि का नियम है । परिवर्तन को ही विकास कहा जाता है । जिसकी उत्पत्ति हुई है उसका विकास होगा और अंत में उसका विनाश होगा । बच्चे का विकास होता है । वह युवक बनता है । पौधे का विकास होता है, वह विशाल वृक्ष बनता है । भाषा में अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते रहते हैं । भारत में शक, हूण, कुषाण, यवन, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज आदि विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के लोग आए । परिणाम -स्वरूप भारतीय भाषाओं ने उनके सैकड़ों शब्द अपनाए । यह भाषा का विकास है । भाषा का विकास या परिवर्तन काल-भेद से भी हो जाता है । वैदिक संस्कृत से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि का विकास काल-भेद के कारण हुआ है । आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की मूल जननी भाषा संस्कृत होने पर भी स्थान -भेद के कारण वे हिन्दी, ओड़िया, बंगला, गुजराती, मराठी, असमी आदि के रूप में विभिन्न भाषाएँ विकसित हुई हैं । राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक आदि परिस्थितियाँ की भिन्नता के कारण भी भाषा में परिवर्तन या विकास होता है । केन्द्रीय सत्ता में अंग्रेज रहने के कारण भारतीय भाषाओं में विदेशी अंग्रेजी शब्द अधिक प्रवेश करने में समर्थ हुए । खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ के आसपास बोली जानेवाली बोली रूप में पहले रहने के कारण विकसित होकर भाषा -रूप को प्राप्त हो गई । अब अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई है ।

यह परिवर्तन भाषा के पाँच स्तरों पर उपलब्ध होता है । वे हैं -

i) ध्वनि परिवर्तन ।

ii) शब्द- परिवर्तन ।

iii) पद -परिवर्तन ।

iv) वाक्य परिवर्तन ।

v) अर्थ -परिवर्तन ।

प्रयत्न लाघव अपूर्ण अनुकरण, मिथ्या सादृश्य आदि कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता

है । स्थाली का थाली, स्तन का थन, मेघ का मेह हो जाना इस प्रकार के परिवर्तन हैं ।

द्वि, सर्प, चक्र, कर्ण आदि तत्सम शब्दों का क्रमश: - दो, साँप, चाक, कान आदि तद्भव शब्दों में परिवर्तन हो जाना शब्द परिवर्तन के उदाहरण हैं ।

संयोगात्मक भाषा संस्कृत की रूप रचना हिन्दी में वियोगात्मक भाषा हिन्दी की रूप रचना से भिन्न होती है । संस्कृत में बालकस्य शब्द में अर्थतत्व और संबंध तत्व मिल कर आते हैं , जबकि हिन्दी में बालक का शब्द में अर्थ तत्व और संबंध तत्व अलग-अलग आते हैं । 'का' संबंध तत्व व्यक्त करता है ।

संस्कृत में वाक्य -रचना ऐसी होती है कि पदों को आगे-पीछे करने पर भी अर्थ में कोई अंतर नहीं आता । हिन्दी में स्थिति इससे अलग है । 'सोहन मोहन' को देखता है को सोहन मोहन को देखता है । कर देने से अर्थ बदल जाता है । अंग्रेजी में वाक्य संरचना में कर्ता-क्रिया -कर्म का क्रम रहता है । क्रम बदलने से अर्थ बदल जाता है जैसे Ram killed Ravan and Ravan killed Ram के अर्थ में जमीन -आसमान का अंतर आ जाता है । मूल शब्द के अर्थ -परिवर्तन को हम आसानी से भाषा में देखते हैं । कुशल (कुश काटने में योग्य) अर्थ छोड़कर चतुर का पर्यायवाची बन गया है । प्रवीण (वीणा -वादक) अब दक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होता है । मृग(पशु) अब हिरन का वाचक बन गया है ।

भाषा में परिवर्तन या विकास के कारणों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है ।

i) आभ्यंतर कारण

ii) बाह्य कारण

जिस परिवर्तन का संबंध स्वयं भाषा से होता है या भाषा प्रयोक्ता से होता है, उसे आभ्यंतर कारण माना जाता है । जिस परिवर्तन का संबंध भाषा के बाहर के तत्वों से होता है उसे बाह्य कारण माना जाता है ।

आभ्यंतर कारण :

1. प्रयत्न लाघय – प्रयत्न लाघव का अर्थ है - कम श्रम से काम पूरा कर लेना । इससे समय की बचत भी होती है । कम श्रम से अधिक काम करना मनुष्य की प्रवृत्ति है । किसी प्रश्न के उत्तर में यदि संभव हो तो हम हाँ, नहीं, या एक -दो शब्दों से अपना अभिप्राय व्यक्त कर देते हैं । टेलीफोन की जगह यदि सिर्फ फोन कहने से काम चल जाता है , तो टेलीफोन कहने के लिए अधिक श्रम और समय खर्च करना अनावश्यक है । यू. एन. ओ., एन. सी. ई .आ.र टी, आई.ए.एस आदि संक्षिप्त करके कहने के पीछे यही प्रयत्न लाघव प्रवृत्ति काम करती है । इस प्रवृत्ति से आदित्यवार को हम इतवार करते हैं ।

प्रयत्न लाघव के कारण भाषा में ध्वनि -परिवर्तन, वर्ण -विपर्यय, समीकरण, विषमयीकरण, स्वरभक्ति आदि हो सकता है ।

किसी शब्द के संयुक्ताक्षर का उच्चारण जब आसान नहीं लगता, तब प्रयोक्ता अपनी सुविधा के लिए उसमें एक स्वर या व्यंजन जोड़कर उच्चारण करता है । जैसे - स्कूल को इस्कूल, स्थायी को अस्थायी, अस्थायी को अ- अस्थायी, स्तुति को अस्तुति, मर्म को मरम, पूर्व को पूरव, शाप को सराप कहा जाता है । यह आगम भाषा के लिखित रूप में नहीं, केवल मौखिक रूप में पाया जाता है । इनका प्रयोग पढ़े-लिखे लोग प्राय: नहीं करते ।

उसी प्रकार, संयुक्ताक्षर के उच्चारण में सुविधा की दृष्टि से कोई ध्वनि उच्चारण न करके छोड़ दी जाती है । इसे लोप कहते हैं । जैसे - ज्येष्ठ - जेठ, दुग्ध - दूध, श्रेष्ठ को सेठ, स्टेशन - टेसन ।

उबड़खाबड़ जमीन को बराबर करने के लिए गड्ढे में मिट्टी डालने और ऊँचे टीले से मिट्टी काटने का काम किया जाता है । इसके बाद राह चलने वाले को कोई तकलीफ नहीं होती उसी प्रकार संयुक्ताक्षर वाले शब्द को उच्चारण की सुकरता के लिए कहीं ध्वनि आगम और तो कहीं लोप कर दिया जाता है ।

उच्चारण की सुविधा के लिए कभी-कभी प्रयोक्ता किसी ध्वनि का परिवर्तन कर देता है । जैसे - कृष्ण - कान्हा । मेघ - मेह, हस्त - हाथ, स्तन - थन । इस परिवर्तन को विकार कहते हैं ।

जब उच्चारण करते समय वर्णों का क्रम उलट जाता है तब उस प्रक्रिया को विपर्यय कहते हैं ।

विपर्यय दो प्रकार से हो सकता है । पहला कारण है बोलने की तेजी और दूसरा कारण है भ्रांत श्रवण ।

बोलते समय मन और वागिन्द्रियाँ दोनों साथ-साथ क्रियाशील रहती हैं । कभी-कभी मन की गति वागिन्द्रियों की गति से तीव्र होती है । आगे की की ध्वनि पर मन के अंश पहुँच जाने के समय जब वागिन्द्रियाँ पीछे की ध्वनि पर रह जाती हैं, तब बाद की ध्वनि पहले और पहले की ध्वनि बाद में उच्चारित होती है, जैसे - कागज-काजग, आदमी-आमदी, डूबना - बूड़ना, अमरूद - अरमूद । यही वर्ण -विपर्यय है । सुनने में गलती हो जाने से या गलत रूप से शब्द मन में बैठ जाने से उच्चाारण करते समय वर्ण - विपर्यय हो जाता है ।

जब दो भिन्न ध्वनियाँ पास-पास रहने से सम हो जाती हैं, तब उस प्रक्रिया को समीकरण कहते हैं, जैसे - दूर्वा - दूब, कर्म - काम, बल्कल - बाकल, वार्त्ता - बात, अग्नि - आग, पत्र - पत्ता , रात्रि - रात, निद्रा - नींद ।

जब एक ही प्रकार की ध्वनियाँ पास -पास रहती हैं तब उनमें भेद कर दिया जाता है । इस

प्रक्रिया को विषमीकरण कहते हैं ।

जैसे - कंकन> कगंन, प्रकट > प्रगट, काम > काग ।

कभी-कभी संयुक्त व्यंजन के उच्चारण में हुई असुविधा को दूर करने के लिए दो व्यंजनों (संयुक्त व्यंजन) के बीच एक स्वर रख दिया जाता है । जैसे - मूर्ति -मूरत, कर्म - करम, नर्म - नरम, स्मरण - सुमिरन इस प्रक्रिया को स्वरभक्ति या मध्यस्वरागम कहते हैं ।

2. बल – हम बोलते समय वाक्य या शब्द के किसी अवयव पर बल देते हैं । इसीलिए सच के स्थान पर सच्च, पका के स्थान पर पक्का कहते हैं । इसी भाव के अधिकता के कारण हम एक शब्द को दो बार भी कहते हैं । जैसे -गरम- गरमागरम, फट - फटाफट । हम प्रेम की अधिकता से बेटी को बिटवा या बिटिया और राम को रमुआ कहते हैं ।

3. अनुकरण की अपूर्णता – भाषा के विकास पर अनुकरण की प्रकृति का प्रभाव पड़ता है । मानसिक संघटन का भी अनुकरण पर प्रभाव पड़ता है । एक प्रतिभाशाली बालक शब्द को जिस रूप में ग्रहण करेगा, एक मंदबुद्धि बालक उसी रूप में ग्रहण नहीं करेगा । अर्थात् दोनों के अनुकरण में भेद पाया जाएगा ।

भाषा का प्रयोक्ता ध्वनि का अनुकरण सुनकर और अवययों के संचालन को देख कर करता है । इस समय वह भाषा के कुछ अंश अनजान में छोड़ देता है या अपनी ओर से कुछ जोड़ देता है । वह अपूर्ण अनुकरण करता है तो त्रुटिपूर्ण उच्चारण करता है । ध्वनियों का स्पष्ट उच्चारण भी वाग्यंत्र पर निर्भर करता है । वाग्यंत्र में दोष होने से उच्चरित ध्वनि भी उससे प्रभावित होती है ।

भाषा-ग्रहण एक मानसिक प्रक्रिया है । भाषा सुनकर सीखी जाती है । भाषा सुनते समय असावधान रहने से अनुकरण भी त्रुटिपूर्ण होगा ।

अशिक्षित लोग प्राय: शुद्ध उच्चारण नहीं करते । उनका अनुकरण सदा दोषयुक्त होता है । अशिक्षित होने के कारण , वे ब-व, श - स, क्ष - च्छ, ण -न का भेद नहीं कर पाते । वे गुण को गुन, देश को देस, क्षत्रिय -छत्रिय, निगुर्ण को निरगुन उच्चारण करते हैं । विदेशी भाषा के शब्द का उच्चारण करते समय ध्वनि का परिवर्तन हो जाता है । जैसे - सिग्नल - सिंगल, आर्डल्र्ली - अरदली, गार्ड - गारड ।

अज्ञानता भी भाषा-विकास का एक कारण है । उपर्युक्त को उपरोक्त, अभिज्ञ को भिज्ञ, अधीन को आधीन कहना अज्ञानता है ।

एक व्यक्ति यदि अशुद्ध सुनता है, तो वह अशुद्ध उच्चारण को स्मरण रखेगा और बाद में अशुद्ध उच्चारण करेगा ।

4. लिपि की अपूर्णता – प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियाँहोती हैं, जिन्हें दूसरी भाषा में लिखना संभव नहीं है । संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियाँ, अरबी की काकल्य ध्वनियाँ दूसरी भाषा में शुद्ध रूप में लिखी नहीं जा सकती । लिप्यंतरण करते समय भी अशोक को अंग्रेजी में अशोका लिखा जाता है । कॉलेज को कालिज लिखना लिपि की अपूर्णता का कारण भी है ।

5. जातीय मनोवृत्ति – जातीय मनोवृत्ति के कारण भी भाषा में परिवर्तन हो जाता है । जाति की विशेषता का भाषा पर सीधा प्रभाव पड़ता है । फ्रांसीसियों में कोमलता होती है । इसलिए उनकी भाषा में सुकुमारता, कोमलता है । जर्मन लोग परिश्रम और कठोर होते हैं, इसलिए उनकी भाषा में कठोरता पाई जाती है । अंग्रेज समयनिष्ठ होते हैं । इसलिए उनकी भाषा में धातु के काल(Tense) पर बहुत बल है । आर्य प्रगतिशील रहे हैं । इसलिए उनमें गत्यर्थक धातुओं की सख्या अधिक है । आर्य धर्म को अधिक महत्व देते हैं । इसलिए अंग्रेजी की तुलना में संस्कृत में धर्म-कर्म से संबंधित शब्दों की बहुलता है । भारत में जाति भेद अधिक रहने के कारण भारत में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के साथ-साथ अनेक अन्य भाषाएँ प्रचलित थीं ।

6. सादृश्य – किसी भी भाषा में सादृश्य के आधार पर भी शब्द अपने स्वाभाविक विकास -क्रम को छोड़कर दूसरे प्रकार से बन जाता है । तुझ के सादृश्य के आधार पर मुझ , द्वादश के सादृश्य के आधार पर एकादश, सृष्टि के सादृश्य के आधार पर सृष्टा के सादृश्य के आधार पर should शब्द ऐसे बने हैं ।

7. नवीनीकरण की प्रवृत्ति – भाषा के प्रबुद्ध वर्ग भाषा में कुछ नयापन लाने के लिए शब्दों को संस्कृतनिष्ठ या हिन्दी निष्ठ बनाकर नए शब्द बना देते हैं । अलेकजेंडर - अलक्षेद्र, टेक्निकल - तकनीकी, लिंग्विस्टिकक्स - भाषिकी, फिजिक्स - भौतिकी, ऑक्सिजन - ओषजन ऐसे शब्द हैं ।

बाह्य करण :

भाषा में कुछ परिर्वतन बाह्य कारणों से हो जाता है । वे हैं -

1. भौगोलिक प्रभाव
2. ऐतिहासिक प्रभाव
3. सांस्कृतिक प्रभाव
4. साहित्यिक प्रभाव
5. वैज्ञानिक प्रभाव
6. वैयक्तिक प्रभाव

7. सामाजिक प्रभाव

8. सभ्यता का प्रभाव

भौगोलिक प्रभाव – भाषा परिर्वतन पर भौगोलिक प्रभाव को मानने में भाषावैज्ञानिक परस्पर विरोधी मत रखते हैं । हेइरिख मेयर -बेन्फी कालित्स, पंतजलि, यास्क भाषा -परिर्वतन के लिए भौगोलिक कारण को महत्वपूर्ण मानते हैं, जबकि येस्पर्सन इसे कोई महत्व नहीं देते ।

यह स्वाभाविक है कि प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव मनुष्य के बाह्य और आंतरिक विकास पर पड़ता है । पहाड़ी क्षेत्रों और मरुभूमियों में रहने वाले जीविका - उपार्जन के लिए कठिन परिश्रम करते हैं और वे दुर्धर्ष हो जाते हैं । उनके व्यवहार में दृढ़ता, कष्ट -सहिष्णुता और पौरुष के गुण आ जाते हैं । इसके विपरीत मैदानी क्षेत्र में रहने वाले कम परिश्रम में आजीविका चला लेते हैं । इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोमलता उपलब्ध होती है । जीने के लिए सतत संघर्षशील लोग प्राय: जिद्दी हो जाते हैं । वे आसानी से अपने व्यवहार, मान्यताएँ, भाषा-बोली नहीं छोड़ते । इसी प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में परिर्वतन का मार्ग उन्मुक्त नहीं रहता । दूसरी भाषाओं की तुलना में उनकी भाषा पुराने रूप में अधिक निकट पाई जाती है ।

पंजाबी और बंगाली लोगों कीं भाषा में परिस्थितिजन्य संघर्ष की अधिकता और न्यूनता के कारण क्रमश: कठोरता और कोमलता पाई जाती है । यही बात पर्वतीय क्षेत्र में रहनेवालों की जर्मन भाषा और मैदानी क्षेत्र में रहने वालों की अंग्रेजी भाषा में पाई जाती है । अंग्रेजी शब्द 'बूक' जर्मन में 'बुख' है । उसी प्रकार वैदिक संस्कृत और अवेस्था भाषा में ध्वनि-परिर्वतन पाया जाता है । संस्कृत सप्त शब्द अवेस्ता में हफ्त है । पंतजलि ने भी देश-भेद से भाषा -भेद हो जाने की बात स्पष्ट करने के लिए कहा है कि दशंती के लिए पूर्व में दाति और उत्तर में दात्र शब्द प्रचलित है ।

जिस प्रकार हारमोनियम की भाथी के जोर से दबाने के समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि और धीरे-धीरे दबाने के समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि में अंतर आ जाता है, उसी प्रकार फेफड़ों से अधिक वायु - प्रवाह द्वारा उच्चारित ध्वनि में कम वायु - प्रवाह द्वारा उच्चारित ध्वनि की तुलना में अधिक बल पड़ता है । यही बल आगे चलकर ध्वनि -परिर्वतन का कारण भी बनता है ।

सेव के पौधे और अंगूर की लताएँ कश्मीर में जैसे फल देते हैं, दिल्ली में वैसे फल नहीं देते । यह भौगोलिक प्रभाव है । यदि पेड़-पौधों पर भौगोलिक प्रभाव पड़ता है, तब मनुष्य की भाषा कैसे उस प्रभाव से मुक्त रह सकती है ।

यह सत्य है कि आधुनिक युग में यातायात के साधनों में और दूरसंचार में आशातीत क्रांति आ जाने से विभिन्न भाषाएँ परस्पर संपर्क में आती हैं और उनमें परिर्वतन की संभावनाएँ बढ़ जाती है ।

ऐतिहासिक प्रभाव – भाषा के विकास में इतिहास का प्रभाव अधिक रहता है । ऐतिहासिक प्रभाव में राजसत्ता में परिर्वतन, क्रांति, बाह्य जातियों का आगमन, व्यापारिक संबंध आदि बातें आती हैं, शब्दावली आती हैं और वाक्य संरचना भी अप्रभावित नहीं रह सकती । हिन्दी में अंग्रेजी से ऑ, अरबी -फारसी से क़, ख, ग़, ज़, और फ़ ध्वनियाँ और मराठी से ळ ध्वनि आई हैं । हिन्दी में अंग्रेजी, अरबी-फारसी, तुर्की, पुर्तगाली शब्दों की भरमार है । शासक अपनी भाषा के शब्दों का प्रयोग शासित लोगों की भाषाओं में बढ़ाता है और शासिक जाति इच्छा से हो या अनिच्छा से, शासक की भाषा अपनाता है । परिणाम -स्वरूप भाषा में परिर्वतन की संभावना बढ़ जाती है ।

कुछ स्थलों पर दूसरी भाषा के व्याकरण के नियम भी प्रवेश कर जाते हैं । जैसे - जिल्द-जिल्दसाज, मेहनत - मेहनतकश, मकान - मकानात, कागज - कागजात, लेटर - लेटर्स, ड्यूटी - ड्यूटिज । हिन्दी के नियामानुसार भी शब्द -रूप बदल जाते हैं - जैसे कालेज-कालेजों, प्रेस, प्रेसों, फुट - फुटों । कभी -कभी शब्दों का हिन्दी -रूपांतरण भी हुआ है । अफिसर-अफसर, लेन्टर्न - लालटेन, रिपोर्ट - रपट , ग्लास -गिलास आदि ।

सांस्कृतिक प्रभाव – संस्कृति को किसी जाति की अंतश्चेतना कहा जा सकता है । सांस्कृतिक संपदा किसी जाति के उत्थान और पतन का बोध करती है । संस्कृति भी विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से, महापुरुषों के आविर्भाव से, विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं के गठन और कार्य -कलापों से प्रभावित होती है ।

अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से बंगाल में ब्राह्म समाज की प्रतिष्ठा हुई । ब्राह्म समाज द्वारा भारत में पुनर्जागरण हुआ और नए-नए शब्द विकसित हुए । महात्मागांधी के अहिंसाभाव, आंदोलन के समय नए-नए शब्द विकसित हुए । स्वामी दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज ने हिन्दी के प्रचार -प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इसी समय हिन्दी में संस्कृत निष्ठ शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा ।

द्रविड़ संस्कृति से मिलन से संस्कृत में द्रविड़ शब्दों का भी प्रवेश हो चुका है ।

साहित्यिक प्रभाव – साहित्यिक प्रभाव के कारण भाषा में भी परिर्वतन होता है । हिन्दी में यह प्रभाव जबरदस्त है । रीतिकालीन साहित्य में लक्षण ग्रंथों की रचना की जाने से भाषा में अनेक परिर्वतन दिखाई पड़े । रामभक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य रचना द्वारा दैनंदिन जीवन में अनेक नए शब्द- प्रयोग बढ़ गए । छायावादी काव्य ने हिन्दी को प्रौढ़ काव्य भाषा - रूप प्रदान किया । द्विवेदी युगीन प्रभाव से इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य रहा । प्रगतिवादी में सपाट बयानी और यथार्थ चित्रण पर महत्व दिया गया । प्रयोगवाद के समय काव्य के कथ्य और शिल्प में नए-नए प्रयोग किए जाने लगे । मध्ययुग में पुनर्जागरण -काल में यूरोप में लातिन का प्रभाव कम हुआ और क्षेत्रीय भाषाओं का विकास

होने लगा ।

वैज्ञानिक प्रभाव – विज्ञान के इस युग में नई-नई खोजों और आविष्कों र के कारण नए -नए तत्वों के नामकरण के लिए असंख्य शब्द बनाए जाते हैं । वैज्ञानिक शब्दावली को प्रत्येक भाषा अपना रही है । भाषा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि भी विकसित हो जाने से हमारी तर्क-प्रधान दृष्टि निरंतर विकसित होती रहती है । इससे भाषा-विज्ञान में नए प्रत्यय और नए शब्द बनते गए हैं । पारिभाषिक शब्दावली के विकास से शब्दों के लिए संकेत शब्दों का प्रयोग बढ़ा है ।

वैयक्तिक प्रभाव – महापुरुष और महत्वपूर्ण व्यक्ति भाषा को प्रभावित करते हैं । उनक प्रभाव से भाषा में परिर्वतन हो जाता है । गोस्वामी तुलसीदास ने अवधी को, सूरदास ने ब्रजभाषा को, दयानन्द सरस्वती ने हिंदी को बहुत प्रभावित किया । महात्मागांधी के राष्ट्रीय आंदोलन के समय नए-नए प्रत्यय और शब्द विकसित हुए । भारत में हिन्दुस्तानी भाषा के विकास में महात्मागांधी का योगदान महत्वपूर्ण है । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी भाषा को व्यकरणसम्मत और समय की मांग के अनुरूप बनाया ।

सामाजिक प्रभाव – समाज के दर्पण के रूप में भाषा समस्त विचारों को अभिव्यक्त करती है । समाज की स्थिरता, अस्थिरता, युद्ध -शांति, जय-पराजय पर भाषा का पूरा प्रभाव पड़ता है । शांति के समय साहित्य, कला, संगीत, धर्म और दर्शन का विकास होता है । नए शब्दों और नए विचारों का विकास होता है । युद्ध के समय नए अस्त्र-शस्त्रों के नामों , शस्त्र विद्या, सैन्य -शिक्षा, उद्‌बोधन मूलक गीतों, राष्ट्रप्रेम मूलक कविताओं का विकास हो जाता है । हमारे पास आज समय की कमी है । इसलिए संक्षिप्त शब्दावली का प्रयोग बढ़ गया है । भौतिक उपलब्धियों के लिए मनुष्य अब संघर्ष कर रहा है । इसलिए रोजगार के क्षेत्र विकसित हुए हैं । ज्ञान-विज्ञान की नई-नई शाखाएँ विकसित हुई हैं । तदनुरूप शब्द - निर्माण शब्द प्रयोग हो रहे हैं ।

सभ्यता का प्रभाव – समाज के बाहरी रूप में सभ्यता प्रतिबिंबित होती है । समाज के बाहरी रूप में कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, कला, साहित्य, मनोरंजन, वेश-भूषा, खेल, पोशाक, प्रसाधन सामग्री , विज्ञान, दर्शन, भेषज, भास्कर्य, नई मशीनें आदि बहुत -सी चीजें आती हैं । प्रत्येक वस्तु के लिए नए-नए नाम आते हैं । कुछ पुराने शब्द नए संदर्भ में नए अर्थ प्रदान करते हैं । कुछ पुराने शब्द अप्रचलित हो जाते हैं । सभ्यता जितनी विकसित होती जाती है, उसका विचार -क्षेत्र , शब्द संपदा उतनी विकसित होती जाती है । उसकी अभिव्यक्ति में पूर्णता आती जाती है । सभ्यता की गति के साथ भाषा भी परिर्वतन का मार्ग अपना लेती है ।

1.4 भाषा की प्रकृति :

भाषायी क्षमता मनुष्य का जन्मजात अधिकार है । इस क्षमता के कारण मनुष्य का स्तर इतर प्राणियों से इतना महान बन सका है । बोलना उसकी नैसर्गिक आवश्यकता है । बोलने की शक्ति उसके पास होने पर भी वह समाज में रहकर ही भाषा सीखता है । समाज के बिना उसका अस्तित्व असंभव है । इसलिए समाज में रहकर निरंतर प्रयत्न करके वह भाषा सीखता है । इस भाषा के माध्यम से वह अपने भाव और विचार दूसरों को संप्रेषित करता है और दूसरों के भाव और विचार ग्रहण करता है । भाषार्जन के साधना है समाज का साहचर्य और लोक व्यवहार ।

महर्षि पाणिनि ने अष्याध्याय में कहा है -

प्रधानप्रत्ययार्थ वचनम् अथस्यान्य प्रमाणत्वात् ।

पंतजलि ने महाभाष्य में कहा है -

लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्द प्रयोगे शास्त्रेण धर्म नियम:

आचार्य जगदीश शब्दार्थ ज्ञान (भाषा -ज्ञान) के लिए आठ साधनों का उल्लेख किया है -

शक्तिग्रहं, व्याकरणोपमान

कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च

वाक्यस्य शेषाद् विवृतर्वदंति

सान्निध्यत: सिद्धपदस्थ वृद्धा:

1. व्याकरण ।

2 उपमान(सदृशवस्तु) के द्वारा

3. कोशग्रंथों के द्वारा

4. आप्तवाक्य से

5. लोक: व्यवहार से

6. प्रकरण से

7. विवरण से

8. ज्ञातपद के साहचर्य से ।

भाषा संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है । यह ज्योति मानव के हृदय के अंधकार को दूर करती है । आचार्य दण्डी ने कहा है कि यदि शब्द रूपी ज्योति संसार में न जलती तो संसार में चारों ओर अंधकार ही रहता ।

इदमन्धतम: कृत्स्नं जायेत् भुवनत्रयम्

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते । (काव्यादर्श)

भाषा मनुष्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और यह एक अनिवार्य आवश्यकता भी है । मनुष्य भाषा के सहयोग से अपनी जीवन -यात्रा सरलता से पूर्ण करता है । 'वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते ।'' पतंजलि ने लिखा है कि एक शब्द का सम्यक ज्ञान और प्रयोग स्वर्ग और लोक में चरम सुख का कारण होता है ।

''एक: शब्द: सम्यग् ज्ञात: सुप्रयुक्त:

स्वर्गलोके कामधुग भवति ।''

भाषा मनुष्य समाज को जीवित रखती है । भाषा के प्रभाव बिना मनुष्य -समाज की कल्पना नहीं की जा सकती । भाषा समाज का निबंधन करने के साथ-साथ संपूर्ण मानव -समाज का भी निबंधन करती है । ऋग्वेद में भाषा को राष्ट्र (राष्ट्र निर्मात्री) और संगमनी (संबद्ध करने वाली) कहा गया है -

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् ।

भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में भाषा को विश्व निबंधनी कहा है -

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबंधनी ।

भाषा और मनुष्य – जाति अविच्छिन्न हैं । भाषा की धारा मनुष्य सापेक्ष है । जब तक मनुष्य- जाति जीवित रहेगी तब तक भाषा रहेगी । व्यकि -समाज का अंग होने के नाते समाज में रहकर प्रयत्नपूर्वक भाषा अर्जन करता है । वह समय के प्रवाह में उसमें कुछ परिवर्तन करता है । वह परिवर्तन समाज द्वारा स्वीकृत होने से भाषा में चल पड़ता है ।

तांड्य महाब्राह्मण में कहा गया है -

सा(वाक्) ऊध्वौदातनोद यथाऽपांधारा सतंतैवम्

जिस प्रकार नदी की धारा निरंतर बहती रहती है उसी प्रकार भाषा भी नित्य नूतन सरस होती हुई सदा अविछिन्न रूप से प्रवाहित होती रहती है ।

ऐतेरेय ब्राह्मण में भाषा को समुद्र के साथ तुलना की गई है - वागवै समुद्र । भाषा हृदय को प्रभावित करती है । इसलिए जाति -भेद और धर्म-भेद होने पर भी भाषा के कारण लोगों में एकता बनी रहती है । भाषा को हृदय के द्वारा सरस और बुद्धि के द्वारा परिष्कृत किया जाता है । ऋग्वेद में कहा गया है -

सम्यक स्रवंति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमाना:

भाषा को सर्व व्यापक कहा जाता है ।

वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने कहा है -

इति कर्त्तव्यता लोके सर्वा शब्द व्यपाश्रय

समस्त लौकिक कर्त्तव्य बोध भाषा पर आश्रित है ।

ऋग्वेद में भाषा को वायु के समान सर्वगामी शक्ति बताया गया है -

अहमेव वात इव प्र वामि आरभमाणा भुवना नि विश्वा ।

शतपथ ब्राह्मण में भाषा स्वरूप को विराट कहा गया है । वाग्वै विराट -

यजुर्वेद में वाक् तत्व को विश्वकर्मा नाम दिया गया है । उसमें सब कुछ काम करने की शक्ति है - वाग् वै विश्वकर्मेर्षि । वाचा हीदं सर्व कृतम्

भाषा में मूर्त -अमूर्त , सत् - असत्, ज्ञान - अज्ञान - सभी को अभिव्यक्त करने की क्षमता है ।

1.5 भाषा के पक्ष :

प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी द सोसूर ने भाषा के तीन पक्षों का उल्लेख किया है ।

i) वैयक्तिक पक्ष

ii) सामाजिक पक्ष

iii) सामान्य या सार्वभौम पक्ष

वैयक्तिक पक्ष – इसे द सोसूर ने पारोल (Parole) कहा है । अंग्रेजी में इसे (Spech) और हिन्दी में व्यक्तिवाचक् कहा जाता है ।

व्यक्ति समाज से भाषा सीखता है । उसकी भाषा के दो पहलू होते हैं-बोधन और अभिव्यक्ति । वह बोधन के द्वारा भाव ग्रहण करता है और अभिव्यक्ति के द्वारा भाव प्रकाश करता है । वह कभी वक्ता बनता है तो कभी श्रोता बनता है । बोधन और अभिव्यक्ति का सिलसिला जारी रहने से वह भाषा का निर्माता होता है और भाषा का प्रसार करता है । भाषा के आदान-प्रदान द्वारा वह भाषा के निरंतर प्रवाह में प्रमुख भूमिका निभाता है । वह भाषा को भी कुछ प्रदान करता है । वह अकेला भाषा में अपनी इच्छा से कुछ परिवर्तन नहीं कर सकता । जब बहुत से लोगों के द्वारा कोई परिवर्तन होता रहता है तब इसे समाज द्वारा भाषा में स्वीकार कर लिया जाता है ।

सामाजिक पक्ष – भाषा का उपयोग समाज में होता है । व्यक्ति की सीमा पार करके भाषा सामाजिक परिवेश में आकर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है । द सोसूर ने भाषा के सामाजिक पक्ष की लांग (Langue) नाम दिया है । अंग्रेजी में इसे टंग(Tongue) और हिन्दी में समष्टि वाक् कहा जाता है । विश्व की समस्त भाषाएँ इस कोटि में आती हैं । इसके बोलने वालों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती । भाषा का यह पक्ष सनातन होते हुए भी नित्य -नूतन है, परिवर्तनशील होते हुए भी शाश्वत है । व्यक्ति किसी भाषिक समुदाय का अंग होते हुए भी अकेले में भाषा में उत्पन्न नहीं कर सकता न परिवर्तन कर सकता है ।

भाषा के सामाजिक पक्ष के लिए वक्ता और श्रोता - दोनों की आवश्यकता है । इसलिए भाषा का ध्वनन और श्रवण - दोनों आवश्यक हैं । वक्ता के मन में पहले किसी भाव या वस्तु का प्रत्यय उत्पन्न होता है । प्रत्यय शब्दबिंब (संकेत) का रूप ग्रहण करता है । शब्द-बिंब ध्वनन के रूप ग्रहण करता है । श्रोता के मन में प्रत्यय (संकेत) उत्पन्न होता है । 'वक्ता और श्रोता के प्रत्यय समान होने में ही भाषा की उपयोगिता सिद्ध होती है ।

सार्वभौम पक्ष – भाषा के सामाजिक पक्ष के बाद यह सार्वभौम पक्ष आता है । जिससे मनुष्य -मात्र को भाषा का बोध होता है । यहाँ हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन, उर्दू, आदि भाषाओं का भेद मिट जाता है । यह भाषा का अद्वैतरूप है । इससे मानव -भाषा की समष्टि का बोध होता है । यहाँ भाषा संप्रेषण का सामान्य साधन बन जाती है । इसे द सोसूर ने लांगाज (Langage) नाम दिया है ।

1.6 भाषा के विविध रूप :

भाषा का प्रयोग व्यक्ति करता है । प्रत्येक व्यक्ति की भाषा बोलने का ढंग अलग-अलग होता है । उसका उच्चारण , शब्द प्रयोग, वाक्य विन्यास भी दूसरे से अलग-अलग होता है । इस दृष्टि से जितने व्यक्ति होंगे, भाषा उतने प्रकार की होगी । प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की छाप उसकी भाषा पर पड़ती है , चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित । प्रेमचंद की भाषा और प्रसाद की भाषा में अंतर है । एक कविता सुनकर कोई आसानी से बता देगा कि वह कविता पंत की है या अज्ञेय की ।

वक्ता के भेद से भाषा के अनेक रूप हो जाते हैं । व्यक्ति की शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, संस्कृति, जाति, व्यवसाय और परिवेश के भेद से उसकी भाषा भी बदल जाती है । एक डाक्टर की भाषा और एक दार्शनिक की भाषा में अंतर पाया जाता है । एक शिक्षित व्यक्ति और एक अशिक्षित व्यक्ति की भाषा में अंतर पाया जाता है । भूगोल, राजनीति , आर्थिक स्थिति, सामाजिक -स्थिति आदि का भी प्रभाव भाषा पर पड़ता है । इनके कारण भाषा -रूप बदल जाते हैं ।

भाषा समाज सापेक्ष है और इसकी उपयोगिता समाज में ही सिद्ध होती है । भाषा के विभिन्न रूपों पर चर्चा करते समय सामाजिक पक्ष पर भी ध्यान देना पड़ता है । इसलिए विश्व भाषा (भाषा को सार्वभौम रूप) भाषा का अमूर्त रूप होने से इसे छोड़कर व्यक्ति और समाज को अधार मान कर भाषा रूपों की चर्चा की जाती है ।

परिनिष्ठित भाषा :

परिनिष्ठित भाषा विभाषा का ही एक परिष्कृत रूप है । यह आदर्श भाषा या टकसाली भाषा या मानक भाषा (Standand Language) है । जो भाषा शिक्षित जन -समुदाय द्वारा प्रयुक्त होती है, शिक्षा -दीक्षा का माध्यम बनती है, राजकाज में जिसका प्रयोग होता है, जिसमें साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध हों, जिसका एक निश्चित और वैज्ञानिकता युक्त व्याकरण हो उसे परिनिष्ठित भाषा कहा जाता है । इस भाषा के मौखिक और लिखत दोनों रूप मिलते हैं । भाषा के मौखिक रूप में सरलता, स्वाभाविकता रहती है और लिखित रूप में कृत्रिमता, आलंकारिकता रहती है । एक वृहत्तर समुदाय में विचारों के आदान- प्रदान की भाषा के रूप में परिनिष्ठित भाषा प्रयुक्त होती है । हिन्दी, ओड़िआ, बंगला, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाएँ हैं ।

परिनिष्ठित भाषा किसी भाषा की उस विभाषा (Dialect) को कहा जाता है । जिसे साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य विभाषाओं की तुलना में वरेण्यता प्राप्त हो जाती है, तथा जिसे अन्य विभाषा -भाषी सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त भाषा स्वीकार कर लेते हैं ।

आचार्य श्यामसुन्दर दास ने परिनिष्ठित भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है :

कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही भाषा (टकसाली भाषा) कहलाती है ।

विभाषा (Dialect)

एक परिनिष्ठित भाषा के अंतर्गत अनेक विभाषाएँ या बोलियाँ होती हैं । स्थान -भेद से भाषा के प्रयोग में भेद पाया जाता है । क्योंकि बहुत दूर तक किसी भाषा में एकरसता नहीं पाई जाती । फिर भी विभाषाओं में बोधगम्यता रहती है । उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा में ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही, विभाषाएँ हैं । हिन्दी क्रिया 'जाता हूँ' के लिए ब्रजभाषा में 'जात हौं' भोजपुरी में 'जात हई' और मगही में 'जा ही' का प्रयोग होता है । यह भेद इतना अधिक नहीं है कि समझ में न आ सके । पर भेद अधिक व्यापक होकर भाषाओं की बोधगम्यता खतम हो जाती है, तो वह विभाषा न होकर एक स्वतंत्र भाषा बन जाती है ।

मेरियो पेई ने विभाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है - विभाषा किसी भाषा विशेष की एक शाखा अथवा एक वरिष्ठ रूप है, जिसका प्रयोग एक निश्चित भूभाग में होता है । उच्चारण, व्याकरण, शब्दावली आदि की दृष्टि से यह भाषा (परिनिष्ठित भाषा) से भिन्न होती है । इस प्रकार की भिन्नताओं के आधार पर यह अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है, लेकिन अस्तित्व की यह स्वतंत्रता उस सीमा तक नहीं होती कि उसे भाषा का दर्जा प्राप्त हो सके । भाषा की अपेक्षा इसका क्षेत्र पर्याप्त सीमित होता है ।''

बोली (**Sub -Dialect**) :

विभाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ होती हैं । यह विभाषा का अपेक्षाकृत छोटा रूप है । कौरवी के अंतर्गत मेरठी, मुजफ्फर नगरी, सहारनपुरी आदि बोलियाँ आती हैं ।

आचार्य श्यामसुन्दर दास ने बोली को इस प्रकार परिभाषित किया है -

बोली से हमारा अभिप्राय उस स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलने वाले के मुख में ही रहती है ।

बोली में स्थानीय रंग होता है । इसके आधार पर पता चल जाता है कि बोलने वाला किस स्थान का है ।

व्यक्ति बोली (**Idiolect**):

व्यक्तिबोली भाषा की सबसे छोटी इकाई है प्रत्येक व्यक्ति की भाषा दूसरे व्यक्ति से अलग होती है । शब्द, शैली, स्वर -भेद, सुर -भेद, उच्चारण आदि के आधार पर हम किसी भी आवाज को अंधेरे में भी पहचान सकते हैं । भाषा -शैलीगत वैशिष्ट्य के कारण हम लेखकों की कविताओं को केवल सुनकर पहचान सकते हैं । एक अध्यापक कक्षा में जैसी भाषा का प्रयोग करेगा, जैसा व्यवहार करेगा, वैसी भाषा का प्रयोग वह घरेलू व्यापार में नहीं करेगा । उनके व्यवहार में भी परिवर्तन परिलक्षित होगा ।

व्यक्ति बोली को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है - व्यक्ति बोली सामान्य भाषा प्रयोग का वैयक्तिक रूप है ; इसमें व्यक्ति -विशेष के उच्चारण, भाषिक विन्यास आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । मेरिओ पेई के अनुसार व्यक्ति बोली व्यक्ति की आदत और शब्दों के चयन संबंधी वैशिष्ट्य के साथ भाषा का वैयक्तिक प्रयोग है ।

अपभाषा (Slang) :

अशिष्ट, असभ्य, अपरिष्कृत और व्याकरण- विरुद्ध भाषा को अप भाषा कहा जाता है । पंतजलि ने महाभाष्य में पहली बार अपभाषा की ओर ध्यान दिया था । उन्होंने लिखा था - ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषित वै । (ब्राह्मण या विद्वान को म्लेच्छ भाषा और अशुद्ध भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

अपभाषा में व्याकरणिक नियमों की उपेक्षा की जाती है - मैंने बोला कि तेरे को कुछ नहीं मिलेगा । अभद्र भाषा का प्रयोग मिलता है - अबे मुर्गी के बच्चे ।

अपरिष्कृत मुहावरों , लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया जाता है - कचूमर निकालना, बाप न मारी मेंढकी बेटा तीरन्दाज ।

सामान्यत: अशिष्ट ,असंस्कृत, अशिक्षित, सामाजिक दृष्टि से निम्न वर्ग के लोग, समवयस्क लोग, हास्य -विनोद में अपभाषा का प्रयोग करते हैं । ऐसे भाषा -प्रयोग से व्यक्ति के सामाजिक - सांस्कृतिक - शैक्षिक स्तर का पता चल जाता है ।

विशिष्ट भाषा (Professionl Language) :

व्यक्ति समाज का अंग होने के नाते अपनी आजीविका चलाने के लिए विभिन्न पेशों में लगा रहता है । प्रत्येक पेशे या व्यवसाय की अपनी शब्दावली होती है । जिसे व्यक्ति दैनंदिन जीवन में हमेशा प्रयोग करता रहता है । किसानी से संबंधित शब्दावली की आवश्यकता एक पुरोहित के लिए जानना जरूरी नहीं है । पुरोहित के द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से किसान का कोई नाता नहीं रहता । इस प्रकार सरकार, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, मजदूर, किसान, लुहार, कुम्हार की शब्दावली अलग-अलग होती है । इसी प्रकार विभिन्न विषयों जैसे - राजनीति विज्ञान, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान, दर्शन, विज्ञान, भूगोल संबंधी शब्दावली अलग-अलग होती है ।

कूट भाषा :

सामान्यत: भावाभिव्यंजना के लिए हम भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु भाषा का और एक उपयोग है - मिथ्या भाषण द्वारा किसी बात की सत्यता को गोपन रखना । ब्याजोक्ति और छेकापह्नुति अलंकार में भी एक बात कहकर असल में उसके विपरीत भाव पर प्रकाश डाला जाता है ।

जिस भाषा में कुछ बताकर कुछ छिपाने का उद्देश्य हो, उसे कूट भाषा कहते हैं । इसके दो उद्देश्य हैं- 1) मनोरंजन । 2) गोपन । काव्य में इसके प्रयोग का उद्देश्य मनोरंजन होता है । सांप्रदायिक

सिद्धांत का निरूपण करते समय कूट भाषा का प्रयोग भी होता है । जैसे - कबीर की उलटबाँसियाँ । तस्कर, व्यापारी, क्रांतिकारी, गुप्तचर, सैनिक इस कूट भाषा का प्रयोग करते हैं, ताकि केवल उनके वर्ग के या सहयोगी लोग इसका असली अर्थ समझ सकें । इसमें शब्द स्वीकृत सांकेतिक रूप सामान्य अर्थ में प्रयुक्त न होकर आरोपित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । इस सांकेतिक भाषा के संकेत को न समझने से वह निरर्थक और समझ सकने से सार्थक होते हैं । चोरों की भाषा में बारात में जाने का अर्थ है - चोरी करने जाना, ससुराल का अर्थ है - जेल । रस मिला दो का अर्थ है - विष मिला दो ।

रिश्वत के लिए देवता को भेंट चढ़ाना । मारना -पीटने को पूजा करना, धनवान के लिए रत्नाकर शब्द का प्रयोग होता है ।

सैनिक शिविर में शत्रु पक्ष से सावधान रहने के लिए उनके प्रवेश को रोकने के लिए प्रत्येक दिन सैनिकों को व्यवहार के लिए एक नया शब्द बोल दिया जाता है । जिसे वे संतरी को बताकर शिविर के बाहर या भीतर आया -जाया करते हैं । इससे कोई शत्रु वेश बदलकर रहस्य जानने के लिए घुस नहीं जाता ।

कूट भाषा का दूसरा रूप है वर्ण-विपर्यय । पानी को नीपा कहकर इस तरह भाव प्रकट किया जाता है । यह बच्चों के मनोरंजन का साधन है । यह रूप सरल है । कभी-कभी शब्द के बीच में कोई ध्वनि या अक्षर डाल दिया जाता है । 'मदन' को चमचदचन कहना या शब्द की मात्रा को आगत वर्ण में जोड़कर हमारे को हरफ मरफा ररफे कहना इस पद्धति की विशेषता है । ऐसे कथन को थोड़ा-सा अबोध बनाकर उत्सुकता बढ़ा दी जाती है । इससे केवल सामान्य रहस्य को गोपन रखा जा सकता है, गूढ़ रहस्य को नहीं ।

और एक रूप है - अंकात्मक कूट भाषा अनावश्यक वर्णों को छोड़कर बाकी वर्णों को उलटफेर करके उनके क्रमिक संख्या निर्धारित किया जाता है । उसे एक सूत्र के रूप में याद किया जाता है । भात्राओं को भी उसी रूप में लिखा जाता है । जैसे -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	
इ	ए	आ	ओ	उ	क	प	ट	त	प ...	
चपाती काटो =		7	10	9	ी	6	T	8	ो ...	

कृत्रिम भाषा (Artificial Language):

गहन-मनन चिंतन के बाद ऐसी एक भाषा पाई जाती है जो सभी भाषाओं के लिए एक सामान्य भाषा का काम करे । अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए इसे प्रस्तुत किया जाता है । इसका उद्देश्य है हजारों

भाषाओं में पाए जाने वाले भेद को मिटाना यानी भाषा -दीवार को मिटाकर विश्ववासियों के लिए एक ही भाषा रख देना - इस प्रकार की भाषा के निर्माण के लिए बहुत प्रयास हुए । सैकड़ों भाषाएँ भी बनीं । पर वे काल-कवलित हो गए ।

कृत्रिम भाषा के संबंध में मेरिओ पेई का विचार इस प्रकार है - यह भाषा किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा बनाई अथवा उत्पन्न की जाती है । यह अंतर्राष्ट्रीय संपर्क अथवा किसी विशिष्ट समूह के प्रयोग के लिए होती है -

Artificial language is a language constructed or created by an individual or a group of indivuals for purposes of international communication , or for use by a special group.

डॉ. एल. एल. जामेनर्हाफ ने 1887 में ऐसी भाषा 'एस्प्रान्तो' का निर्माण किया । इसको विभिन्न देशों ने अपनाया । इस भाषा में मौलिक पुस्तकों की भी रचनाएँ हुईं । अनुवाद भी किए गए ।

सोसूर (Saussure) ने एस्पेरान्तो में कुछ सुधार करके 'एस्पेरान्तिहो' भाषा की रचना की । 1904 में लूई द ब्यूफ्रो (Louis de Beafront) ने एक नई भाषा की रचना की, और उसका नाम रखा 'इडो' । लेकिन उस कृत्रिम भाषा को अपनाने में कई कठिनाइयाँ आती हैं ।

1) यह दैनिक जीवन के व्यवहार के लिए काम चलाऊ है, पर गंभीर विषयों के लिए उपयुक्त नहीं है ।

2) विकास मूलक गुणों से बंचित होने के कारण इसमें उच्चकोटि के मौलिक साहित्य की रचना करना असंभव है । इस भाषा में कोई भी वैचारिक संवेदना उत्पन्न नहीं हो सकती ।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा में रचना करने में अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है । दूसरी भाषा में नहीं । अंग्रेजी भाषा में बहुत से भारतीय विद्वान रचना करने में प्रवृत्त हुए । पर सफल नहीं हुए । मातृभाषा में लिखकर गोस्वामी तुलसीदास, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विद्यापति, प्रेमचन्द आदि अमर हो गए हैं । क्योंकि मातृभाषा हृदय की भाषा होती है । हृदय के उद्‌गारों को यथावत् मातृभाषा के माध्यम से संप्रेषित किया जा सकता है । मातृभाषा के प्रति सहज आकर्षण होता है । अपरिचित भाषा के प्रति वैसा लगाव नहीं होता ।

जीवन रस और भावात्मक लगाव के अभाव में कृत्रिम भाषा का जीवित रहना संभव नहीं है ।

सबसे महात्वपूर्ण बात यह है कि कृत्रिम भाषा द्वारा भाषा -भेद मिटाना संभव नहीं है । प्रयोक्ता पर मातृभाषा के उच्चारण का प्रभाव रहता है । इसलिए विभिन्न भाषा -भाषी इस कृत्रिम भाषा की ध्वनियों को विभिन्न प्रकार से उच्चारण करने से इसके उद्देश्य की सफलता में संदेह उत्पन्न हो जाता है ।

मिश्रित भाषा (Mixed Language)

हल्के -फुलके व्यापारिक उद्देश्य से मिश्रित भाषा का जन्म होता है । इस प्रकार की भाषा के माध्यम से विभिन्न भाषा भाषी वस्तु का भाव -मोल, खरीद-बिक्री आदि कर सकते हैं । चीन में विकसिक पिजन इंगलिश (Pidgin English) इस प्रकार की भाषा है, जिसके शब्द अंग्रेजी के हैं, और उच्चारण ध्वनि -व्यावस्था तथा व्याकरण चीनी भाषा के हैं ।

भूमध्य सागर के बंदरगाह में ऐसी एक भाषा 'सबीर' बोली जाती है, जिसमें फ्रांसीसी, स्पेनी, इतालवी, ग्रीक और अरबी आदि भाषाओं का मिश्रण है ।

ऐसी भाषा में न कोई साहित्य की रचना की जा सकती, न इसका कोई वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित व्याकरण की रचना करना संभव है ।

पर ऐसी भाषा के अस्तित्व का आधार बहुत -सी जीवन्त और समृद्ध भाषाओं में होने से इसे एक सहायक भाषा (Auxiliary Language) के रूप में व्यवहार किया जा सकता है ।

स्थिति के आधार पर भाषा - भेद :

भाषाओं का साहित्यिक महत्व ज्ञान की अभिव्यक्ति- क्षमता, प्रयोग -क्षेत्र और प्रयोक्ताओं की संख्या बढ़ जाने से भाषाओं को स्थितिगत महत्व प्राप्त होता है । यह स्थिति घट जाने से भाषाओं का महत्व घट जाता है । इस आधार पर भाषाओं की तीन स्थितियाँ संभव हैं । जैसे - राष्ट्रभाषा, राजभाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा ।

राष्ट्रभाषा :

राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र की प्रतिनिधि होती है । राष्ट्रभाषा के माध्यम से भावात्मक एकता और राष्ट्रीय गौरव का बोध होता है । भारत एक बहुभाषी देश है । हिन्दी भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा माना जाता है । इसी माध्यम से सभी प्रांतों के लोग भिन्न-भिन्न भाषा -भाषी होने के बावजूद हिंदी भाषा के माध्यम से संपर्क रखते हैं । एक सार्वभौम राष्ट्र में राष्ट्रभाषा का होना अपरिहार्य है । राष्ट्रभाषा के माध्यम से राष्ट्र के दिल की धड़कन नापी जा सकती है । यह लोगों की विश्वासमयी और प्रेममयी भाषा होती है । इसलिए महात्मागांधी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा बिना राष्ट्र गूंगा है । राष्ट्रभाषा में अपनी संस्कृति, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान की अभिव्यक्त करने की पूरी क्षमता रहती है । लोग राष्ट्रभाषा बोलकर जिस गौरव का बोध करते हैं, वह गौरव परायी भाषा बोलकर मिल नहीं सकता । राष्ट्रभाषा राष्ट्र के स्वाभिमान को पुष्ट करती है । राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक एकता के संवर्धन के लिए तथा भारत के अन्तप्रांतिय व्यवहार के लिए राष्ट्रभाषा का उपयोग किया जाता है ।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार ''राष्ट्रभाषा की कल्पना इससे (राज्यभाषा से) भिन्न है । उसका पद और भी बड़ा है । उसी भाषा का गौरव सबसे अधिक हो सकता है और वही राष्ट्रभाषा कहला सकती है, जिसको सब जनता समझती हो और जिसका अस्तित्व सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो ।''

काका कालेलकर के अनुसार ''राष्ट्रभाषा को हम और भी कई नाम देंगे, उसको 'सबकी बोली' कहेंगे, 'कौमी जवान' कहेंगे 'हृदय की भाषा' कहेंगे 'स्नेह भाषा' या 'एक्य भाषा' कहेंगे और सबसे बढ़कर 'स्वराज्य भाषा' कहेंगे ।

राजभाषा :

राजभाषा राजकाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा होती है । आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के विचार से राज्यभाषा(राजभाषा) उसे कहेंगे, जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र-व्यवहार, राजकार्य और अन्य सरकारी लिखा-पढ़ी के काम में लाई जाए । अत: राजभाषा एक अन्त:प्रादेशिक मध्यवर्तिनी भाषा होती है, जो भिन्न भाषा -भाषी प्रदेशों के बीच संपर्क स्थापन करती है । हिंदी भारत (संघ) की राजभाषा है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी । संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा ।

एक स्वाधीन राष्ट्र के संदर्भ में राजभाषा ही उस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा होती है । पर एक पराधीन राष्ट्र में शासक की भाषा ही राजभाषा होती है । भारत परतंत्र जब था उस समय अंग्रेजी राजभाषा थी, पर हिंदी राष्ट्रभाषा थी । राजभाषा को शासन की स्वीकृति मिलती है ।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा :

विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक संप्रेषण की भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं । विश्व संस्थाओं का कार्य चलाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता जरूरी है । यातायात के साधन और दूरसंचार के विकास द्वारा दूरी और देरी समाप्त हो गई है । वैज्ञानिक और तकनीकी विकास दिन दूना रात चौगुना हो रहा है । भिन्न देशों के निवासियों के संपर्क की संभावना बहुत बढ़ गई है । इस दृष्टि से अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है । यूनेस्को ने अंग्रेजी, फ्रांसीसी और स्पेनी भाषाओं को अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा प्रदान किया है । राष्ट्रसंघ द्वारा अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पेनी, रूसी और चीनी भाषाओं द्वारा कार्य-संपादन किया जाता है ।

1.7 भाषा और बोली :

भाषा और बोली में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होता । स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि एक भाषा -क्षेत्र के भीतर बोलियाँ अलग-अलग लोगों द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों में कुछ विभेदक विशेषताओं के साथ बोली जाती है । यदि कोई बोली किन्हीं कारणों से प्रमुखता प्राप्त कर लेती है, उच्च स्तरीय चिंतन -ममन का परिष्कृत रूप प्राप्त कर लेती है, तब वह भाषा बन जाती है । राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक कारणों से भी कोई बोली भाषा की मान्यता प्राप्त कर लेती है । राजनीतिक केन्द्र दिल्ली के आसपास बोली जाने के कारण खड़ीबोली बोली के स्तर से उठ कर भाषा बन गई । इसलिए भाषाविद् एल. एच. ग्रे के अनुसार भाषाओं और बोलियों में विभाजक रेखाएँ खींचना असंभव है । It is impossible to draw exact lines of demarcation between either dialects or Languages.

भाषा और बोली के भेदक तत्व निम्न प्रकार से हैं -

1) भाषा के अंतर्गत पाई जाने वाली बोलियों में कुछ अंतर रहते हुए भी बोधगम्यता रहती है । खड़ीबोली बोलने वाला ब्रजभाषा या कनौजी समझ सकता है । पर हिन्दी भाषा बोलने वाला अंग्रेजी या तमिल समझ नहीं सकता । भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है । अर्थात् एक विस्तृत क्षेत्र में भाषा का प्रयोग होता है । जबकि बोली का प्रयोग एक सीमित क्षेत्र में होता है । एक भाषा क्षेत्र में कई बोलियाँ हो सकती हैं, पर एक बोली -क्षेत्र में कई भाषाएँ नहीं होती ।

भाषा का प्रयोग सामान्यत: साहित्य, शिक्षा और शासन- क्षेत्र में होता है । लेकिन बोलियों में कभी-कभी उत्कृष्ट रचनाएँ भी मिलती हैं , जैसे अवधी में रामचरित मानस या मैथिली में विद्यापति की पदावली या ब्रज में सूरदास के पद ।

बोली का भाषा बन जाने का प्रमुख कारण है लोगों के पारस्परिक संपर्क में वृद्धि । जब संपर्क में दूरी आ जाए तो बोलियों में भेद बढ़ता है । संपर्क से बोली की दक्षता घट जाती है । वह परिमार्जित होकर सभी भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो जाती है, और भाषा बन जाती है ।

निम्नलिखित तत्व संपर्क बृद्धि में सहायक हैं :

1) **प्राकृतिक कारण –** पहले पहाड़, जंगल, नदी मरुभूमि के कारण और आवागमन की सुविधा न रहने के कारण लोग छोटे-छोटे क्षेत्रों में रहते थे, बाहर की भाषाओं के संपर्क में नहीं आ पाते थे । इसलिए आज की स्थिति की तुलना में पहले बोलियों की संख्या अधिक थी । आधुनिक युग में प्राकृतिक बाधाएँ प्राय: समाप्त हो चुकी हैं । इसलिए पहले की तुलना में बोलियों की संख्या कम हो गई है । प्रमुख बोली का सीमा -विस्तार होकर वह भाषा बन जाती है ।

सामाजिक कारण – एक ही भाषा की भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलने वाले वर-बधू जब विवाह -बंधन में आबद्ध हो जाते हैं, या खेल -कूद के मेले में जब एक ही भाषा की भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलने वाले इकट्ठे होते हैं, तब वे अपनी -अपनी बोली को छोड़कर परिनिष्ठित भाषा में बातचीत करते हैं । इस स्थिति में भाषा का प्रसार होता है और बोलियों का व्यवहार संकुचित हो जाता है । बच्चे खेल के मैदान में अपने साथियों से भाषा भी जल्दी सीख जाते हैं ।

धार्मिक कारण – भारत के लोग अधिक धार्मिक होते हैं । वे विभिन्न धार्मिक स्थलों में जाते हैं । वहाँ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोग आते - जाते रहने से वे एक सर्वग्राह्य भाषा 'हिंदी' का प्रयोग करते हैं । रामेश्वर हो या बद्रीनाथ, पुरी हो या द्वारका सर्वत्र हिन्दी का प्रयोग होता है । धार्मिकता के कारण संस्कृत और पालि का प्रसार व्यापक हो सका ।

साहित्यिक भाषा – बोलियों में प्रर्याप्त साहित्य की रचना होने से उनका विकास होता है, वे भाषा की सीमा में पहुँच सकती हैं । साहित्य की उपलब्धि के कारण भाषा दीर्घजीवी होती है, और बोलियाँ मिट जाती हैं । संस्कृत भाषा इस समृद्ध साहित्य के कारण आज जीवित है जबकि इस समय की कोई बोली आज नहीं है, यह भी संभव है कि अवधी में रामचरित मानस , ब्रज में सूरसागर, मैथिली में विद्यापति की पदावली समृद्ध साहित्य हैं, फिर भी ये केवल एक ही विधा 'कविता' तक ही सीमित रह गईं । साहित्य की अन्य विधाओं - गद्य रूप, नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, जीवनी रेखाचित, संस्मरण आदि के क्षेत्र में इन भाषाओं में साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ । ये भाषाएँ व्यापक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकीं जिस बोली का साहित्य, दर्शन, विज्ञान, तकनीकी के विचार-संप्रेषण आदि में उपयोगी हो जाए, वह भाषा बन सकती है ।

भाषा शिक्षा का माध्यम - भाषा बनती है जबकि बोली लोक-भाषा, लोक साहित्य, लोक गीत, बोल चाल का माध्यम बनकर रह जाती है ।

राजनीतिक कारण राजनीतिक पृष्ठपोषकता प्राप्त करके किसी भाषा का प्रचार होता है और वह भाषा प्रतिवेशी भाषाओं की तुलना में व्यापक क्षेत्र में अधिक प्रसारित हो जाती है । सम्राट अशोक के कारण पालि भाषा विदेशों में प्रसारित हो गई । राजनीतिक कारण से बोली के रूप में रहने वाली फ्रांसीसी की तुलना में अंग्रेजी विश्व भर में फैल जाने का कारण है इसका उपनिवेशवाद । राजनीतिक पृष्ठपोषकता के अभाव में भाषा रूप में रहने वाली ब्रजभाषा बोली के स्तर पर आ गई ।

सैनिक -सेवा का कारण – विश्व युद्ध के समय विभिन्न भाषा -भाषी राष्ट्रों के सैनिकों को एक साथ रहना पड़ता था । भावों के विनिमय के लिए उनको एक प्रमुख भाषा अंग्रेजी अपनानी पड़ी । भारतीय -सेना में भर्ती होने वाले विभिन्न भाषा -भाषी सैनिक दैनंदिन कार्य के लिए सामान्य भाषा

हिंदी का व्यवहार करते हैं । इस दृष्टि से भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सैनिक -सेवा का भी योगदान रहता है ।

शैक्षिक कारण – सभी बोलियों के माध्मय से समस्त ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना असंभव है । लेकिन एक सामान्य माध्यम के रूप में भाषा को अपनाने से सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और अबोध्यता की आशंका समाप्त हो जाती है । अशिक्षित लोग अपनी बोली के दायरे में भले ही सीमित रहें , पर शिक्षित जन-समुदाय बोली के दायरे से मुक्त होकर शिष्ट लोगों के साथ भाषा के द्वारा संप्रेषण कार्य पूरा करते हैं ।

आर्थिक कारण – विभिन्न भाषा–भाषी लोग रोजगार की तलाश में औद्योगिक क्षेत्रों में पहुँचते हैं । उन्हें संप्रेषण कार्य पूरा करने के लिए सर्वस्वीकृत भाषा अपनानी पड़तीी है । दूसरे भाषा -भाषी क्षेत्र में जाकर व्यापार करने वालों को भी व्यापार में सुविधा की दृष्टि से स्थानीय भाषा सीखनी पड़ती है । इसलिए जिस क्षेत्र में बहुत से लोग रोजी -रोटी के लिए इकट्ठे होते हैं , उनको वहाँ की भाषा सीखनी पड़ती है और उस भाषा का प्रचार-प्रसार होता है ।

वैज्ञानिक कारण – यातायात के साधन, मुद्रण-यंत्र के आविष्कार, समाचार पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों के प्रकाशन, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा के प्रसार के परिणाम -स्वरूप भाषा में एकरूपता और स्थिरता आने के अवसर उपलब्ध हुए हैं । भाषा को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने में, उच्चारण की शुद्धता लाने में और शब्द भंडार की वृद्धि में ये साधन महत्वपूर्ण योगदान देते हैं ।

सामाजिक कारण – बोलियों का व्यवहार करने वाले के मन में अपनी अलग पहचान दिखाने की भावना रहती है । दिल्ली में रहनेवाले लोग यदि हिन्दी का प्रयोग न करके मगही, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रजभाषा आदि बोलियों का प्रयोग करेंगे, तब आसानी से हिंदी समझ सकने वाले दूसरे भाषा -भाषी उनकी बातें समझ सकेंगे । अर्थात् इस क्षेत्र में बोलियाँ संप्रेषण -कार्य में बाधक बन कर खड़ी होंगी । लोग सामान्यत: बोलियों में घिरे रहने वालों को अनपढ़, संकीर्ण भाववाले समझते हैं । इसलिए पढ़े-लिखे लोग सामाजिक मर्यादा प्राप्त करने के लिए बोली के दायरे से मुक्त होकर परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करने को प्रेरित होते हैं ।

भाषा और बोली में कोई मौलिक अंतर नहीं है । यह केवल व्यवहार -क्षेत्र, शिक्षा के माध्यम, दूसरों की ग्रहणशीलता के प्रश्न, मानक रूप, विशाल साहित्य भंडार, राष्ट्रीय संस्कृति से निकटता और विचार भावों के संपूर्ण प्रकाशन आदि तत्वों पर, संपक; भाषा के माध्यम, प्रतिष्ठा निर्भर करता हैं ।

***

UNIT - II

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 ध्वनि विज्ञान

2.2 वाग्यंत्र

2.3 भाषिक ध्वनियाँ : स्वर

2.4 मान स्वर और गौण मान स्वर

2.5 सुंयक्त स्वर

2.6 व्यंजन

2.6.1 उच्चारण के स्थान पर

2.6.2 उच्चारण के आधार पर

2.7 आई. पी. ए. चार्ट

आई. पी. ए. चार्ट (हिंदी संस्करण)

2.8. खंडेतर ध्वनियाँ

2.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के बाद आप

* वाग्यंत्र का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
* स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का अंतर समझ सकेंगे ।
* हिन्दी के स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण कर सकेंगे ।
* हिन्दी भाषा की सामग्री को आई. पी. ए. में लिख सकेंगे ।
* हिन्दी की खंडेतर ध्वनियों की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे ।

2.1 ध्वनि विज्ञान :

भाषा विज्ञान में भाषा का अध्ययन किया जाता है । भाषा -विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ हैं - ध्वनि-विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान ।

ध्वनि -विज्ञान (Phonetics) - भाषा मात्र की ध्वनियों या स्वनों की उच्चारण प्रक्रिया, स्वनों की प्रकृति और स्वनों के भेदों के अध्ययन को स्वन विज्ञान या ध्वनि विज्ञान कहा जाता है ।

मनुष्य स्वनों का उच्चारण करता है । उच्चरित स्वन वायु-तरंगों के रूप में श्रोता तक पहुँचता है । श्रोता कानों द्वारा इन तरंगों को ग्रहण करता है । कान तरंगों के रूप में आए स्वनों को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं ।

इस दृष्टि से स्वन विज्ञान की तीन उपशाखाएँ होती हैं - वे हैं -

i) उच्चारात्मक स्वन -विज्ञान

ii) तरंगात्मक स्वन विज्ञान

iii) श्रवणात्मक स्वन विज्ञान

स्वनिम विज्ञान (Phonemics) - भाषा विशेष के संदर्भ में स्वन को स्वनिम कहा जाता है । हिन्दी भाषा के स्वनिम विज्ञान में स्वनिमों की संख्या, उच्चारण स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से उनकी विशेषताओं, उनकी प्रकृति की चर्चा की जाती है । स्वनिम भाषा विशेष की न्यूनतम ध्वन्यात्मक इकाई है, जो अर्थ परिवर्तन की क्षमता रखती हो ।

रूप विज्ञान- रूप-विज्ञान में किसी भाषा के रूपिमों का अध्ययन किया जाता है । रूपिम किसी भाषा की लघुतम सार्थक इकाई होता है ।

मनुष्य अलग-अलग स्वनिमों का उच्चारण न करके एक या एकाधिक स्वनियों की इकाई का शब्द के रूप में प्रयोग करता है, जिसका कोई अर्थ होता है । 'घर' शब्द में तीन स्वनिमों का संयोग हुआ है, जिसका एक अर्थ है । 'घर' एक रूपिम है । इस रूपिम को खंडित करके सार्थक इकाई प्राप्त नहीं की जा सकती । घरों में हमें दो सार्थक इकाइयाँ मिलती है । वे हैं -

घर-ओं, 'घर' से एक वस्तु का बोध होता है और 'ओं' से बहुवचन का अर्थ द्योतित होता है । रूपिम को हम दो भागों में रखते हैं -

i) मुक्त रूपिम

ii) बद्ध रूपिम

मुक्त रूपिम का स्वतंत्र प्रयोग होता है, जबकि बद्ध रूपिम स्वतंत्र रूप से न आकर मुक्त रूपिम के साथ आकर उसकी कुछ विशेषताएँ व्यक्त करता है । रूप विज्ञान में रूपिम के वितरण और विश्लेषण की प्रक्रिया पर चर्चा की जाती है ।

वाक्य विज्ञान -वाक्य विज्ञान में वाक्य की चर्चा की जाती है, जो अर्थ या भाव की दृष्टि से एक पूर्ण इकाई है । रूपिम एक निश्चित भाषायी व्यवस्था में निचित क्रम से आकर वाक्य में पूर्ण अर्थ व्यक्त करते हैं । वाक्य के लक्षण, प्रकार, स्थानांतरण, रूपिमों के परिवर्तन के आधार आदि की चर्चा वाक्य विज्ञान के अंतर्गत आती हैं ।

अर्थ विज्ञान - अर्थ विज्ञान में किसी भाषा के कथ्य या अर्थतत्व की चर्चा की जाती है । इस अर्थ के माद्यम से भाषा प्रयोक्ता अभिव्यक्ति से वस्तु तक और वस्तु से अभिव्यक्ति तक पहुँचता है । अर्थ विज्ञान में अर्थ -शब्द -संबंध, अर्थ के प्रकार, अर्थ परिवर्तन के कारण, अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर चर्चा की जाती है ।

2.2 वाग्यंत्र :

ध्वनि विज्ञान के एक अध्येता को वाग्यंत्र के विभिन्न भागों और कार्यों का ज्ञान होने से वह अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा की ध्वनियों का कुशलता से उच्चारण कर सकेगा । अन्य भाषा की ध्वनियों के शिक्षण के समय उसे किसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना नहीं पड़ेगा । इसलिए उसे वाग्यंत्र के विभिन्न अवयवों का ज्ञान होना आवश्यक है ।

वाग्यंत्र की सहायता से जितनी ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं, वे सभी भाषिक ध्वनि के रूप में गृहीत नहीं होते । उनमें से कुछ ध्वनियों की सहायता से भाषा का कार्य चलता है ।

फेफड़ों से निकलने वाली हवा ध्वनि का मूल कारण है । इस वायु को वाग्यंत्र के विभिन्न अवयवों द्वारा विभिन्न रूप देकर ध्वनि में बदल दिया जाता है ।

वाग्यंत्र का वर्णन और कार्यकारिता :

1 . ओंठ – दोनों ओंठ ध्वनि -निर्माण में सहायता करते हैं । नीचे का ओंठ ऊपर के ओंठ की तुलना में अधिक गतिशील रहता है । दोनों ओठों की सहायता से उच्चरित होने वाली ध्वनि को द्वयोष्ठ्य (प) ध्वनि कहते हैं । दाँत और ओंठ की सहायता से उच्चरित होने वाली ध्वनि को दंत्योष्ठ्य (फ़) ध्वनि कहते हैं ।

ओंठों की आकृति के आधार पर स्वर ध्वनियों को तीन भागों में बाँटा जाता है ।

i) उदासीन - इसमें दोनों ओंठ स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं ।
जैसे - मानस्वर स्वर a) के उच्चारण में

ii) गोलाकार स्थिति - इस समय दोनों ओंठ एक रंध्र की सृष्टि करते हैं । ओंठों के दोनों कोण पास आ जाते हैं - जैसे - मानस्वर (u)

iii) विस्तृत स्थिति- इस समय ओंठों के दोनों कोण अधिक से अधिक दूरी पर रहते हैं । जैसे - मानस्वर (I)

दाँत – ध्वनि के उच्चारण में ऊपर के दाँतों का उपयोग किया जाता है । नीचे के ओंठ और दाँत तथा जिह्वा की नोक तथा दाँत की सहायता से क्रमश: दन्त्योष्ठ्य और दन्त्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं । हिंदी में फ़ दंत्योष्ठ्य और त, थ, द, ध दन्त्य ध्वनियाँ हैं ।

वर्त्स्य – ऊपर के दाँतों के मूल से कठोर तालु के प्रारंभ तक का स्थान वर्त्स कहलाता है । जिह्वा की नोक और वर्त्स के सहयोग से उच्चरित ध्वनि को वर्त्स्य कहते हैं । हिंदी में र, ल, वर्त्स्य ध्वनियाँ हैं ।

कठोरतालु – वर्त्स से लेकर कोमलतालु तक जो कठोर स्थान पाया जाता है, उसे कठोरतालु कहते हैं । इस स्थान से उच्चरित ध्वनि को तालव्य ध्वनि कहते हैं । हिन्दी के च, छ, ज, झ, य, तालव्य ध्वनियाँ हैं

मूर्धा – कठोरतालु और कोमलतालु के बीच का स्थान मूर्धा कहलाता है । इस स्थान से बोली जाने वाली ध्वनि मूर्धन्य है । ट, ठ. ड, ढ हिन्दी की मूर्धन ध्वनियाँ हैं ।

कोमलतालु – मूर्धा के बाद जो अंश कोमल प्रतीत होता है उसे कोमलतालु कहते हैं । कोमलतालु ऊपर -नीचे हो सकता है । यह वाग्यंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है । यह मुख रंध्र और नासारंध्र के बीच किवाड़- सा काम करता है । कोलमतालु ऊपर उठकर नासारंध्र का मार्ग बंद कर देने से निरनुनासिक ध्वनियों का उच्चारण होता है और नीचे झुककर मुखरंध्र को बंद कर देने से समस्त वायु इस समय नासा रंध्र मार्ग से निकलती है । इस समय उच्चरित होने वाली ध्वनियों को नासिक्य ध्वनियाँ कहते हैं । ञ, ङ, ण. न, म आदि को हिन्दी में नासिक्य ध्वनियाँ कहते हैं । जिह्वापश्च और कोमलतालु की सहायता से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें कंठ्य ध्वनियाँ कहते हैं । हिन्दी में क, ख, ग, घ कंठ्य ध्वनियाँ हैं ।

अलिजिह्वा या कौआ – कोमलतालु के अंतिम छोर पर लटकते हुए छोटे -से गोलाकार मांसपिंड को अलिजिह्वा या कौआ कहा जाता है ।

कोमल तालु के साथ ऊपर-नीचे होकर कौआ ध्वनि उत्पादन में सहायता प्रदान करता है ।

कौआ जिह्वापश्च से मिलकर क़ (q) ध्वनि उत्पन्न करता है ।

जिह्वा – भाषण अवयवों में जिह्वा का स्थान प्रमुख है । जिह्वा सरलता से मुख विवर में ऊपर-नीचे , आगे - पीछे होकर ओंठ से कोमलतालु तक का स्पर्श करके विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकती है । जिह्वा बीच में नाली बन कर भी ध्वनि उत्पन्न कर सकती है । जिह्वा को विभिन्न भागों में हम बाँटते हैं, जिनसे अलग-अलग ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं ।

जिह्वा की नोक – जिह्वा की नोक सबसे अधिक गतिशील है । कुछ ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक उदासीन होकर रहती है, यानी नीचे के दाँतों के मूल में रहती है ।

यह ऊपर के दाँतों का स्पर्श करके त[t], थ [th] आदि दंत्य जिह्वायाँ उत्पन्न करने में सहायता करती है । वर्त्स के पास आकर संघर्षी ध्वनि स [s] उत्पन्न करती है । इस जगह से उत्पन्न ध्वनि वर्त्स्य स्पर्श या वर्त्स्य संघर्षी कहलाती है । फेफड़ों से आने वाली वायु द्वारा यह विताड़ित होकर बार-बार हिलकर या लुंठित होकर र[r] ध्वनि उत्पन्न होने में सहायता करती है । यह वर्त्स्य का मध्य बिन्दु स्पर्श करते समय एक या उभय पार्श्व जब खुले रहते हैं तो पार्शिवक ध्वनि उत्पन्न होती है । हिंदी की ल[L] ध्वनि पार्श्विक ध्वनि है । यह पीछे की ओर मुड़ी हुई रहकर मूर्धा को स्पर्श करके मूर्धन्य ध्वनि ट [t], ठ [th] आदि उत्पन्न होने में सहायता करती है ।

चित्र -1

जिह्वा- फलक – जिह्वा का स्वाभाविक रूप से बाहर जो अंश निकल सकता है उसे जिह्वा फलक कहा जाता है । यह वर्त्स के ठीक विपरीत रहता है । जिह्वा-फलक ऊपर के दाँतों और वर्त्स के संयोग से ध्वनियाँ उत्पन्न करता है ।

जिह्वाग्र – कठोर तालु के विपरीत रहने वाले जिह्वा- अंश को - जिह्वाग्र कहा जाता है । जिह्वाग्र और कठोरतालु के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ तालव्य व्यंजन ध्वनियाँ हैं । स्वरों के उच्चारण में जिह्वाग्र कठोरतालु की ओर उठकर अग्रस्वरों इ [i] , ए [e] आदि ध्वनि उत्पादन में सहायता करती हैं ।

जिह्वापश्च – जिह्वा का शेष भाग जिह्वापश्च कहलाता है । यह विभिन्न मात्रा में कोमलतालु की ओर उठकर पश्चस्वर उ [u] , ओ [o] आदि के उत्पन्न में सहायता करता है । यह कोमलतालु का स्पर्श करके क [k] और कौए का स्पर्श करके क़[q] ध्वनियाँ उत्पन्न करने में सहायता करता है ।

जिह्वापश्च कोमलतालु और कौए के पास पहुँचकर वायु निर्गमन-मार्ग को संकीर्ण करके और पीछे हटकर गलविल -मार्ग को संकीर्ण करके संघर्षी ध्वनियाँ उत्पन्न करने में सहायता करता है । ये ध्वनियाँ अरबी भाषा में सुनाई पड़ती हैं ।

उपालिजिह्वा या गलविल – उपालिजिह्वा या गलविल नासारंध्र और स्वर यंत्रावरण के बीच और जिह्वामूल के पीछे के खाली स्थान को कहते हैं । यह एक चौराहा जैसे स्थान है, जहाँ नाक, मुख और भोजन नली के रास्ते मिलते हैं । जिह्वापश्च को पीछे हटा कर गलविल को विभिन्न आकार देकर विशेष प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती है ।

स्वरयंत्रावरण – जिह्वामूल के नीचे पत्ते के समान उठे हुए मांसल भाग को स्वरयंत्रावरण कहते हैं । ध्वनि उत्पन्न करने में इसका योगदान न होने पर भी स्वरयंत्र की रक्षा करना इसका काम है ।

स्वरयंत्र – भीतर की ओर श्वास नली के अंत में बक्से के आकार का जो उभरा हुअ अंश दिखाई पड़ता है , वही स्वरयंत्र है । सामान्यत: हम इसे कंठ कहते हैं । इसमें आगे से पीछे की ओर विस्तृत दो तंत्रियाँ हैं । इन्हें स्वरतंत्रियाँ कहते हैं । ये श्वास नली के ढक्कन का काम करते हैं । ये दोनों तंत्रियाँ प्रसारित होकर श्वास मार्ग को रोक देती हैं और संकुचित होकर उसे उन्मुक्त कर देती हैं । ये फेफड़ों से आनेवाली हवा को नियंत्रित करती हैं । स्वरतंत्रियों के बीच के स्थान को काकल कहते हैं । यह सामान्यत: श्वास -प्रश्वास के समय खुला रहता है और भारी काम करते समय बंद रहता है । स्वरतंत्रियों की सहायता से इसे विभिन्न आकार देकर ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं । ध्वनियों के उच्चारण में मुख्यत: स्वरतंत्रियों की चार स्थितियाँ होती हैं ।

चित्र -2

पहली स्थिति में दोनों स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से इतनी दूर रहती हैं कि वायु उनसे बिना रगड़ खाए निकल जाती है । इस स्थिति में स्वरतंत्रियों में कोई कंपन नहीं होता । ऐसी स्थिति में जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह अघोष ध्वनि कहलाती है । प [p], स [s], त [t], क [k] आदि अघोष ध्वनियाँ हैं ।

चत्र -3

दूसरी स्थिति में दोनों स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से इतना निकट आ जाती हैं कि वायु उनसे रगड़ खाकर निकलती है । इस समय जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह सघोष ध्वनि कहलाती है । आ(a), इ [i], उ [u], ग [g], ड [d], ब [b] आदि सघोष ध्वनियाँ हैं ।

चित्र -4

तीसरी स्थिति में स्वरतंत्रियाँ सामान्य शिथिल रहती हैं और श्वास -प्रश्वास सामान्य गति से प्रवाहित होती रहती है । इस समय किसी भी ध्वनि का उच्चारण नहीं होता ।

चत्र -5

चौथी स्थिति में स्वरतंत्रियाँ इस तरह रहती हैं कि काकल का प्राय: 3/4 भाग बंद रहता है और 1/4 भाग खुला रहता है । इस स्थिति में उसे फुसफुसाहट की ध्वनि सुनाई पड़ती है । इस समय स्वरतंत्रियों में कंपन नहीं होता, यानी सारी ध्वनियाँ अघोष रहती हैं । फुसफुसाहट ध्वनि उत्पन्न करने के चार उपाय हैं ।

i) स्वरतंत्रियाँ पास-पास आ जाती हैं, पर उनके किनारों में इतना तनाव होता है कि उनमें कंपन की संभावना नहीं रहती ।

ii) स्वरतंत्रियाँ परस्पर मिलने की स्थिति में आने पर भी बीच में कुछ स्थान खुला रह जाता है । इसी खुले भाग से निकलने वाली हवा से फुसफुसाहट की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

ii) स्वरतंत्रियों के ऊपर समानान्तर दो कृत्रिम स्वरतंत्रियाँ हैं । मुख्य स्वरतंत्रियाँ खुली रहने पर भी कृत्रिम स्वर तंत्रियाँ परस्पर समीपवर्ती होकर हवा के निर्गमन के मार्ग को संकीर्ण कर देती हैं । इस समय उच्चरित ध्वनि फुसफुसाहट की ध्वनि हो जाती है ।

iv) स्वरतंत्रियों की अघोष -सघोष की बीचवाली स्थिति में भी एक प्रकार की फुसफुसाहट की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

जब स्वरतंत्रियाँ परस्पर टकराकर एक झटके के साथ अलग हो जाती हैं, तब काकल्य स्पर्श ध्वनि उत्पन्न होती है । यह ध्वनि भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं हैं ।

श्वासनली – फेफड़े से कंठ तक लंबी नली को श्वासनली कहते हैं । बाहर से फेफड़ों तक वायु के आने - जाने के लिए यही एक मात्र मार्ग है ।

नासाविवर – साधारण स्थिति में श्वास -प्रश्वास लेते समय वायु मुखविवर से न जाकर नासाविवर से आती जाती है । निरनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण के समय कोमलतालु ऊपर उठ कर नासा -विवर मार्ग को पूर्णत: बंद कर देता है । यह नीचे झूककर मुखरंध्र को पूरी तरह बंद कर देता है और इस समय नासिक्य ध्वनियाँ म [m] , न[n] आदि उच्चरित होती है । कभी -कभी हवा मुखविवर और नासाविवर दोनों विवरों से निकलती है और इस समय अनुनासिक ध्वनियाँ आँ[ã]. इँ [ĩ] आदि उच्चरित होती हैं ।

फेफड़े – फेफड़ों से निकली वायु से ही ध्वनि का उच्चारण होता है । फेफड़ों पर जोर लगाकर अधिक प्रश्वास का उपयोग करके किसी ध्वनि पर अधिक बल दिया जा सकता है ।

उपर्युक्त सभी अंगों को वाक्-यंत्र या वागिंद्रियाँ कहा जाता है । इनमें से कुछ अवयव सचल अंग हैं, जैसे - नीचे का ओंठ, जीभ, कोमल तालु आदि । इन्हें करण भी कहा जाता है । कुछ अवयव अचल रहते हैं । जैसे तालु । ध्वनि उत्पन्न करते समय कभी दो अवयव आपस में मिल जाते हैं तो कभी पास-पास आ जाते हैं ।

2.3 भाषिक ध्वनियाँ : स्वर :

भाषिक ध्वनियों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है । 1 स्वर, 2. व्यंजन ।

1) स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में फेफड़ों से आने वाली वायु बिना किसी रूकावट के मुखविवर से बाहर निकल जाती है । स्वरों का उच्चारण करते समय मुख-द्वार को कम या अधिक तो किया जा सकता है, पर पूरी तरह से बंद नहीं किया जा सकता या न इतना बंद कि वायु को रगड़ खाकर निकलना पड़े ।

स्वर की परिभाषा :

(vowels are modifications of the voiced sounds that involve no closure , friction or contact of the tongue and lips.- (Bloomfield.)

A vowel is defined as a voiced sound in forming which the air issues in a continuous stream through the pharynx and mouth, there being no obstruction and no narrowing such as would cause audible friction. - (Daniel Jones)

स्वर वह सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण में श्वास -नलिका से आती हुई श्वास धारा -प्रवाह से अबाध गति से मुख से निकलती जाती है और मुख-विवर में ऐसा कोई संकोच नहीं होता कि किंचितमात्र भी संघर्ष या स्पर्श हो (बाबूलाल सक्सेना)

वे ध्वनियाँ, जिनके उच्चारण में निर्गत श्वास में कहीं अवरुद्धता न हो, स्वर कहलाती है ।

(उदयनारायण तिवारी)

स्वर वह घोष (कभी -कभी अघोष भी) ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अवाध गति से मुखविवर से निकल जाती है । (प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा)

स्वरों का वर्गीकरण :

स्वरों के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित आधार हैं :

क) होंठों के आधार पर : स्वरों के उच्चारण के समय आकार भिन्न -भिन्न प्रकार का रहता है । ई, इ के उच्चारण के समय ओंठ फैले रहते हैं । इस समय उच्चरित ध्वनियों को अवृत्ताकार या विस्तृत ध्वनियाँ कहते हैं । ऊ, उ, के उच्चारण के समय ओंठ गोलाकार हो जाते हैं । इस समय उच्चरित ध्वनियों को वृत्ताकार या सर्तृल ध्वनियाँ कहते हैं । इ, ई, ए , ऐ अवृताकार और उ, ऊ, ओ , औ, आ, वृत्ताकार हैं ।

ख) जिह्वा के ऊपर उठे भाग की दृष्टि से स्वरों के उच्चारण में जिह्वा करण का काम करती है । कुछ स्वरों के उच्चारण के समय जिव्हा का अग्रभाग ऊपर उठता है, कुछ स्वरों के उच्चारण के समय जिह्वा का मध्यभाग ऊपर उठता है, कुछ स्वरों के उच्चारण के समय जिह्वा का पश्च भाग ऊपर उठता है । इस दृष्टि से स्वरों को तीन भागों में रखा जाता है ।

हिंदी में -

i) अग्रस्वर - ई, इ, ए, ऐ

ii) मध्वस्वर - अ

iii) पश्चस्वर- उ, ऊ, ओ, और, आ

ग) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से हम देखते हैं कि 'ई' के उच्चारण में जिह्वा जितनी ऊँचाई तक उठती है, 'ए' के उच्चारण में उससे कम और 'ऐ' के उच्चारण में उससे और कम ऊँचाई तक उठती है । उसी प्रकार 'ऊ' के उच्चारण में जिह्वा जितनी ऊँचाई तक उठती है, 'ओ' के उच्चारण में उससे कम और 'औ' के उच्चारण में उससे और कम ऊँचाई तक उठती है जिह्वा कम ऊँचाई तक उठेगी तो

मुखविवर अधिक खुलेगा और जिह्वा अधिक ऊँचाई तक उठेगी तो मुखविवर कम ऊँचाई तक खुलेगा । जीभ कितनी ऊँचाई तक उठती है और फलस्वरूप मुखविवर कितना खुलता है उसके आधार पर स्वरों को चार भागों में रखा गया है ।

i) स्वर के उच्चारण के लिए जिह्वा की सबसे ऊँची स्थिति में और मुखविवर की अधिक मात्रा में खुलने की स्थिति में संवृत्त स्वर उत्पन्न होता है ।

ii) स्वर के उच्चारण के लिए जिह्वा की सबसे नीची स्थिति में और मुखविवर की कम मात्रा में खुलने की स्थिति में 'विवृत स्वर' उत्पन्न होता है ।

iii) संवृत से थोड़ी नीची और अर्ध विवृत से थोड़ी ऊपर वाली जिह्वा की स्थिति में अर्ध -संवृत्त' स्वर उत्पन्न होता है ।

4) विवृत्त से थोड़ी ऊपर और अर्ध -संवृत्ति से थोड़ी नीचे वाली जिह्वा की स्थिति में 'अर्ध-विवृत' स्वर उत्पन्न होता है ।

हिंदी में इ, उ संवृत, ए, ओ अर्ध संवृत ऐ, औ, अ अर्ध विवृत और आ विवृत ध्वनियाँ हैं ।

स्वरतंत्रियों का आधार :

ध्वनियों के उच्चारण में कभी स्वरतंत्रियों में कंपन होता है, तो कभी-कभी सामान्वय सभी स्वर सघोष होते हैं । कुछ भाषाओं में अघोष स्वर पाए जाते हैं । आई. पी. ए. में अघोष स्वर को दर्शाने के लिए स्वर संकेत के नीचे शून्य (०) या उल्टा v(∧) चिन्ह दिया जाता है ।

वायु निर्गमन मार्ग के आधार पर :

फेफड़ों से निकली वायु से स्वर का उच्चारण करते समय वायु -निर्गमन केवल मुख विवर से या मुखविवर तथा नासा विवर से हो सकता है । पहली स्थिति में उच्चरित स्वर को मौखिक स्वर या निरनुनासिक स्वर तथा दूसरी स्थिति में उच्चरित स्वर को अनुनासिक स्वर कहते हैं । अ, आ, ई आदि स्वर हैं तो अँ, आँ, इँ आदि अनुनासिक स्वर हैं । आई-पी.ए. में अनुनासिकता का संकेत ~ है ।

उच्चारण में समय की मात्रा के आधार पर :

कुछ स्वरों के उच्चारण में कम समय लगता है तो कुछ स्वरों के उच्चारण में अधिक समय लगता है । अधिक समय लगने वाले स्वर को दीर्घ स्वर कहते हैं । दीर्घ स्वर के उच्चारण में ह्रस्व

स्वर से दुगुना समय लगता है । अ, इ, उ ह्रस्व स्वर हैं तो आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ और दीर्घ स्वर हैं ।

दृढ़ता – कुछ स्वरों के उच्चारण में जिह्वा की मांसपेशियाँ ढीली रहती हैं तो कुछ में तनी हुई । इस आधार पर स्वर ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं ।

दृढ़ और शिथिल – अंगूठे को चिबुक तथा कंठ के बीच रखकर दृढ़ ध्वनियों के उच्चारण के समय मांसपेशियों के तनाव को अनुभव किया जा सकता है । एक भाषा में कुछ ध्वनियाँ अन्य ध्वनियों की तुलना में अधिक दृढ़ होती हैं । कुछ भाषाएँ भी अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक दृढ़ होती हैं । अंग्रेजी की तुलना में फ्रासीसी की और ओडिआ की तुलना में हिंदी की कुछ ध्वनियाँ अधिक दृढ़ होती हैं ।

2.4 मानस्वर और गौणमान स्वर :

मानस्वर का संबंध किसी भाषा विशेष से नहीं होता । विभिन्न भाषाओं में पाए जाने वाले स्वरों के लिए यह एक मानक या आदर्श है । आठ मानक स्वरों को जिह्वा के भाग, जिह्वा की ऊँचाई और ओंठों के आकार के आधार पर स्वर त्रिकोण में दिखाया जाता है । किन्तु यदि हम अवृत्ताकार स्वरों को वृत्ताकार स्वरों की भाँति और वृत्ताकार स्वरों को अवृताकार स्वरों की भाँति बोलें तो ऐसे स्वर गौणमान स्वर कहलाते हैं ।

फोटो

मानस्वरों का वर्णन :

1.	I	संवृत,	अग्र,	अवृत्ताकार
2.	e	अर्ध संवृत,	अग्र,	अवृत्ताकार
3.	6	अर्ध विवृत	अग्र,	अवृत्ताकार
4.	a	विवृत	अग्र,	अवृत्ताकार
5.	a	विवृत	पश्च	वृत्ताकार (स्वल्प)
6.	)	अर्ध विवृत	पश्च	वृत्ताकार (स्वल्प)
7.	o	अर्ध संवृत	पश्च	वृत्ताकार
8.	u	संवृत	पश्च	वृत्ताकार

मानस्वर की विशषताएँ :

1. ये किसी भाषा के स्वर नहीं हैं । अर्थात् याट्टच्छिक स्वर हैं ।
2. ये स्वर सभी के लिए ज्ञात हैं । ये उपमान की तरह हैं
3. ये स्वर क्षेत्र की परिधि पर स्थित हैं । इस परिधि में बाहर कोई स्वर नहीं है ।
4. प्रत्येक दो निकटस्थ मानस्वरों में समान ध्वन्यात्मक दूरी रहती है ।
5. इनकी संख्या आठ है ।

2.5 संयुक्त स्वर :

संयुक्त स्वर के उच्चारण में भाषण - अवयव एक उच्चारण स्थिति से निकलकर दूसरी उच्चारण स्थिति में पहुँच जाते हैं । [अइ] और [अउ] संयुक्त स्वर हैं । [अउ] के उच्चारण के समय ओंठों की अवस्था बदलती है और(अइ) ऊपर की ओर जिह्वा उठती है। इसके उच्चारण में जिह्वा के एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक साँस में पहुँचने के कारण उन्हें चलध्वनि या श्रुति कहा जाता है ।

संयुक्त स्वर को आरोही, अवरोही नाम से दो भाग में बाँटा जाता है । आरोही संयुक्ताक्षर का प्रथम स्वर गौण रहता है और दूसरा मुख्य । यह संवृत की ओर से विवृत की ओर जाती है । अर्थात् जिह्वा ऊपर से नीचे की ओर आती है । अवरोही संयुक्ताक्षर में प्रथम स्वर अधिक मुखर और दूसरा स्वर ह्रासोन्मुख होता है । इसमें प्रथम स्वर बलाघात युक्त होता है । द्वितीय स्वर बलाघात रहित होता है । इसमें ध्वनि विवृत से संवृत्त की ओर जाती है ।

फोटो

2.6 व्यंजन :

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में भाषण-यंत्र में कभी तो हवा बिलकुल रुक जाती है और कभी भाषण अवयवों द्वारा द्वारा निर्मित संकीर्ण मार्ग से निकलती है जिससे घर्षण उत्पन्न होता है ।

परिभाषाँ : व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण करते समय निश्वास कहीं न कहीं अवरोध होता है । (प्रो. केदारनाथ शर्मा - भाषाविज्ञान की भूमिका)

व्यंजन वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती । या तो उसे पूर्ण अवरुद्ध होकर आगे बढ़ना पड़ता है या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पड़ता है । या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पार्श्वों से निकलना पड़ता है । इस प्रकार वायु मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है । (डॉ. भोलनाथ तिवारी, भाषा विज्ञान)

A consonant conversely , is a sound for whose production the air -current is completely stopped by an occlusion of the larynx or the oral passage or is forced to squeeze through a narrow construction, or is deflected from the median line of its channel.through a lateral opening, causes one of the supraglottal organs to vibrate.

(Bloch and Tragor. Outlines of Linguistic Analysis)

(व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में फेफड़ों से आनेवाली वायु स्वरतंत्री, या मुख मार्ग में कहीं पूर्णतया रोकी जाती है । या अत्यंत संकुचित मार्ग से निकलती है, या मुखविवर की स्वर सीमा से हटते हुए जिह्वा के एक या दोनों ओर से निकलती है, या स्वरतंत्री से ऊपर वाले किसी वाग् अवयव में कंपन पैदा करती है ।)

व्यंजनों का वर्गीकरण :

उच्चारण की दृष्टि से मुखविवर को दो भागों में बाँटा जा सकता है । एक ऊपर का, जो स्थिर है, दूसरा नीचे का, जो अस्थिर है ।स्थिर अवयवों को 'करण' कहते हैं । ऊपर ओंठ, दाँत, वर्त्स, कठोरतालु, मूर्धा और नीचे ओंठ, जीभ, दाँत आते हैं । इन सबको उच्चारण -अवयव कहा जाता है ।

मुँह के निचले भाग का कोई अवयव यदि ऊपर के किसी अवयव को स्पर्श करता है, उन स्थान को उच्चारण स्थान कहा जाता है । यदि जीभ की नोंक वर्त्स को छूती है, तब वर्त्स एक उच्चारण स्थानी है ।

हमें ध्वनि उत्पन्न करते समय देखना पड़ता है कि हवा किस प्रकार निकलती है । कभी-कभी दो अवयव परस्पर को स्पर्श करते हैं तो हवा का निर्गमन मार्ग बिलकुल अवरुद्ध हो जाती है, इस समय उच्चरित होने वाली ध्वनि को स्पर्श ध्वनि कहा जाएगा । जब दो अवयव एक-दूसरे के पास आकर हवा निर्गमन का मार्ग संकरा कर देते हैं, इस समय हवा घर्षण करती हुई निकलती है तो इस ध्वनि को संघर्षी ध्वनि कहा जाएगा । उच्चारण के स्थान और प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का भी वर्गीकरण किया जाता है ।

अर्थात् व्यंजनों के वर्गीकरण के मुख्य दो आधार हैं -

1) उच्चारण के स्थान के आधार पर

2) उच्चारण -प्रयत्न के आधार पर ।

2.6.1 उच्चारण स्थान के आधार पर :

1. द्वयोष्ठ्य इस प्रकार की व्यंजन -ध्वनि उत्पन्न होने के लिए नीचे का ओंठ ऊपर के ओंठ का स्पर्श करके हवा को पूरी तरह मुख- विवर में अवरोध कर लेता है । हवा के दबाव से अवरोध स्फोटन के साथ एकाएक खुल जाता है और ध्वनि सुनाई पड़ती है । हिंदी की प्,फ्, ,ब्, भ्, म्, द्वयोष्ठ्य ध्वनियाँ हैं ।

2. **दंत्योष्ठ्य –** इन ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओंठ ऊपर के दाँत के पास आ जाता है । व् और फ़् इस प्रकार की ध्वनियाँ हैं ।

3. **दंत्य –** जिह्वा की नोक दाँतों का स्पर्श करने से यह ध्वनि उत्पन्न होती है । हिंदी की त्, थ्, द्, ध् दंत्य ध्वनियाँ हैं ।

4. **वर्त्स्य –** वर्त्स्य ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक वर्त्स को स्पर्श करती है । हिंदी की न्, स्, र्, ल् ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं ।

5. **तालव्य –** वर्त्स के पीछे की ओर का कठोर स्थान कठोरतालु कहलाता है जिह्वा की नोक या जिह्वाग्र और कठोरतालु के स्पर्श से तालव्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती है । च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, श्, य् हिंदी की तालव्य ध्वनियाँ हैं ।

6. **मूर्धन्य –** कठोर तालु से और पीछे का भाग मूर्धा कहलाता है । मूर्धन्य ध्वनि के उच्चारण में जिह्वाग्र उलटकर मूर्धा को स्पर्श करता है । हिंदी की ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् ध्वनियाँ मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं ।

7 . **कंठ्य –** मूर्धा के पीछे कौवे तक के भाग को कोमलतालु या कंठ कहते हैं । इस ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा पश्च कोमलतालु का स्पर्श करता है । हिन्दी की क्, ख्, ग्, घ्, ङ् कंठ्य ध्वनियाँ हैं ।

8. **काकल्य –** स्वरयंत्र द्वार या काकल से उच्चरित होने वाली ध्वनि को काकल्य ध्वनि कहते हैं । हिंदी की ह् काकल्य ध्वनि है ।

2.6.2 उच्चारण प्रयत्न के आधार पर :

उच्चारण-प्रयत्न की दृष्टि से व्यंजन निम्न प्रकार के हैं :

1. **स्पर्श –** स्पर्श व्यंजन ध्वनि के उच्चारण में दो काम होते हैं - हवा का अवरोध और उन्मोचन। स्पर्श ध्वनि के उच्चारण के लिए दो भाषण अवयव परस्पर मिलकर वायु मार्ग को पूर्णत: बंद कर देते हैं । उसी समय फेफड़ों से निकलने वाली हवा का दबाव पड़ता है । तब अवरोध स्फोटन के साथ एकाएक खुल जाता है, इस समय सुनाई पड़ने वाली ध्वनि को स्पर्श ध्वनि कहते हैं ।

ध्वनि के उच्चारण से पहले अवरोध के समय स्वरयंत्र की स्वरतंत्रियों में कंपन होने से ध्वनि सघोष हो जाती है और कंपन न होने से ध्वनि अघोष हो जाती है ।

स्पर्श व्यंजन के उच्चारण के समय फेफड़ों में वायु कम आ सकती है, और अधिक भी । वायु की मात्रा के आधार पर स्फोटन शिथिल हो सकता है और तीव्र भी । कम वायु और शिथिल स्फोटन के साथ जो ध्वनि सुनाई पड़ती है उसे अल्पप्राण तथा अधिक वायु और तीव्र स्फोटन के साथ सुनाई पड़ने वाली स्पर्श ध्वनि को महाप्राण व्यंजन कहते हैं ।

स्पर्श ध्वनि को भी पूर्ण या अपूर्ण रूप से उच्चरित किया जा सकता है । संयुक्ताक्षर में प्रथम ध्वनि के उच्चारण में उन्मोचन से पहले भाषण -अवयव दूसरी ध्वनि के उच्चारण के लिए तैयार हो जाने से प्रथम स्पर्श के स्फोटन का अवसर नहीं मिलता । ऐसी स्थिति में प्रथम ध्वनि को अपूर्ण स्पर्श व्यंजन कहा जाता है । स्वतंत्र रूप से उच्चरित स्पर्श व्यंजन या संयुक्ताक्षर द्वितीय स्पर्श व्यंजन को पूर्ण स्पर्श

व्यंजन कहा जाता है । भक्त शब्द में क्[k] अपूर्ण व्यंजन है और त[t] पूर्ण व्यंजन है ।

जिस संयुक्त व्यंजन में द्वितीय व्यंजन नासिक्य होता है, उसके प्रथम निरनुनासिक ध्वनि के उच्चारण में स्फोटन मुखविवर में न होकर नासाविवर में होता है । ऐसी स्थिति में प्रथम व्यंजन को नासिक्योन्मुक्त स्पर्श -व्यंजन माना जाता है । यत्न शब्द में त्[t] ऐसी ध्वनि है ।

दोनों ओंठों को स्पर्श करके द्वयोष्ठ्य स्पर्श ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है । प्, फ्, ब्, भ्, त् , थ्, द्, ध्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, क्, ख्, ग्, घ् ऐसी ध्वनियाँ हैं ।

नासिक्य : नासिक्य ध्वनि के उच्चारण में कोमलतालु नीचे झुक जाता है, नासा -विवर पूर्ण रूप से खुल जाता है और संपूर्ण वायु नासाविवर से होकर बाहर निकलती है । मुखविवर में स्पर्श व्यंजन की तरह किसी न किसी समय पर पूर्ण अवरोध होता है । म्, न्, ण्, ञ्, ङ् के उच्चारण में पूर्ण अवरोध क्रमश: ओंठों, दाँत, मूर्धा, तालु और कंठ पर होता है ।

स्पर्श संघर्षी : स्पर्श संघर्षी ध्वनि के उच्चारण में पहले दो भाषण अवयवों का तो स्पर्श होता है, पर उन्मोचन एकाएक न होकर धीरे-धीरे होता है । दो अवयव धीरे-धीरे अलग होने के परिणाम स्वरूप वायु को थोड़े समय के लिए संकीर्ण मार्ग मिल जाता है और वह संघर्ष करते हुए बाहर निकलती है । हिंदी में च्, छ्, ज्, झ् ध्वनियाँ स्पर्श -संघर्षी व्यंजन ध्वनियाँ हैं ।

लुंठित : इस वर्ग की ध्वनि के उच्चारण के लिए जिह्वा की नोक फेफड़ों से आने वाली वायु के प्रभाव से बड़ी तेजी से हिलकर वर्त्स से टकराती है । हिंदी की ध्वनि र्, वर्त्स्य लुंठित व्यंजन ध्वनि है । जिस ध्वनि के उच्चारण में कौआ कंपित होकर जिह्वापश्च से टकराता है उसे लुंठित अलिजिह्वीय व्यंजन कहते हैं । फ्रांसीसी और जर्मन भाषा में यह ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

लुंठित ध्वनियाँ संघर्षी और संघर्षहीन दोनों प्रकार से उत्पन्न की जा सकती हैं । यदि अवरोध के मध्य वायु को निकलने का प्रर्याप्त रास्ता मिलता है तो संघर्ष उत्पन्न नहीं होता । किन्तु रास्ता संकीर्ण होने से संघर्ष उत्पन्न हो सकता है । ऐसी ध्वनि संघर्षी लुंठित ध्वनि कहलाती है ।

उत्क्षिप्त : उक्षिप्त ध्वनि के उच्चारण में उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान से टकराकर बड़े वेग से वापस आ जाता है । इसमें वायु -मार्ग का पूर्ण अवरोध तो होता है, पर क्षणिक होता है । स्पर्श व्यंजनों की तुलना में भाषण अवयव कम क्षेत्र को छू पाता है । हिंदी में ड़् और ढ़् ध्वनियाँ उत्क्षिप्त हैं । इनका उच्चारण करने के लिए जिह्वानोक ऊपर उठती है, पीछे की ओर मुड़ती है, और तालु के अग्र भाग का स्पर्श करते हुए बड़े वेग से लौती हैं ।

पार्श्विक : हिंदी की 'ल' ध्वनि पार्श्विक ध्वनि है । 'ल' के उच्चारण के समय जिह्वा की नोक वर्त्स्य की ओर जाती है और वायु के निर्गमन का मार्ग बंद हो जाता है । किन्तु जिह्वा की नोक से

दोनों तरफ से वायु बाहर निकलने का रास्ता रहता है । पार्श्व से वायु निकलने से इस ध्वनि को पार्श्विक व्यंजन ध्वनि कहते हैं । पार्श्व रास्ते को पर्याप्त संकीर्ण करके अघोष पार्श्विक संघर्षी ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है । स्वरतंत्रियों में कंपन उत्पन्न करके सघोष पार्श्विक संघर्षी ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है । अन्य भाषाओं में यह ध्वनि उपलब्ध है । जिह्वा की नोक को पीछे की ओर मोड़कर कठोरतालु का स्पर्श करके अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य पार्श्विक व्यंजन ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है । यह [l]ओड़िआ भाषा में बहुतायत से सुनाई पड़ता है ।

सघर्षी – संघर्षी ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा का कोई भाग इतनी ऊँचाई तक उठ जाता है कि वायु मार्ग अत्यंत संकीर्ण होता है । जिह्वा ऊपर के किसी अवयव का स्पर्श नहीं करती । ऐसी स्थिति में वायु रगड़ खाती हुई या संघर्ष करती हुई मुखविवर से बाहर आती है । ऐसी ध्वनियों को संघर्षी ध्वनियाँ कहा जाता है । हिंदी की स्, श्, फ़्, ज़्, ऐसी ध्वनियाँ हैं । [स] के उच्चारण में जिह्वा 'नोक' और जिह्वा फलक वर्त्स के विपरीत रहते हैं । दाँतों के पीछे का मार्ग संकीर्ण होता है । वायु मार्ग एक नाली के रूप में होता है । जिह्वा के दोनों किनारे ऊपर उठ जाने से और बीच में एक नाली-सी बन जाती है । वायु इस नाली से रगड़ खाकर निकलती है । यह [स] अघोष वर्त्स्य संघर्षी व्यंजन ध्वनि है । [श] के उच्चारण में जिह्वा फलक के नीचे और नीचे के दाँतों के पीछे एक लघुविवर बन जाता है । उससे वायु रगड़ खाकर निकलती है ।

अर्धस्वर : जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायुमार्ग पर्याप्त विवृत्त होता है, जिससे वायु में संघर्ष उत्पन्न नहीं होता, उसे संघर्षहीन सप्रवाह ध्वनि कहते हैं । सभी अर्धस्वर और स्वर संघर्षहीन सप्रवाह ध्वनि हैं । हिंदी में [य] और [व] अर्धस्वर हैं । इनका उच्चारण न तो ठीक स्वर की भाँति होता है, न ठीक व्यजनों की भाँति। इसलिए इन्हें अर्धस्वर कहा जाता है ।

[य] के उच्चारण में जिह्वा एक प्रकार के [i] के उच्चारण के लिए तैयार होकर एकाएक अपेक्षाकृत विवृत स्थिति की ओर बढ़ती है । जिह्वामध्य कठोरतालु की ओर उठता है । दोनों ओंठ फैले रहते हैं । यह तालव्य संघोष अर्धस्वर हैं ।

[व] के उच्चारण में जिह्वा पहले [u] के उच्चारण के लिए तैयार होकर एकाएक वहाँ से अपेक्षाकृत विवृत स्थिति की ओर अग्रसर होती है । दोनों ओंठ गोलाकार होकर कुछ आगे की ओर निकल पड़ते हैं । यह द्व्योष्ठ्य ध्वनि है ।

ध्वनियों का वर्णन :

ई	विस्तृत	अग्र	संवृत	दीर्घ
इ	विस्तृत	अग्र	संवृत	ह्रस्व
ए	विस्तृत	अग्र	अर्धसंवृत	दीर्घ
ऐ	विस्तृत	अग्र	अर्धविवृत	दीर्घ
ऊ	वर्तृल	पश्च	संवृत	दीर्घ
उ	वर्तृल	पश्च	संवृत	ह्रस्व
ओ	वितृल	पश्च	अर्धसंवृत	दीर्घ
औ	वर्तृल	पश्च	अर्ध विवृत	दीर्घ
आ	वर्तृल	पश्च	विवृत	दीर्घ
अ	उदासीन	मध्य	अधविंवृत	ह्रस्व

क	कंठ्य	स्पर्श	अघोष	अल्पप्राण
ख	,,	,,	,,	महाप्राण
ग	,,	,,	संघोष	अल्पप्राण
घ	,,	,,	,,	महाप्राण

च	तालव्य	स्वसंघशर्षी	अघोष	अल्पप्राण
छ	,,	,,	,,	महाप्राण
ज	,,	,,	संघोष	अल्पप्राण
झ	,,	,,	,,	महाप्राण

ट	मूर्धन्य	स्पर्श	अघोष	अल्पप्राण
ठ	,,	,,	,,	महा प्राण
ड	,,	,,	संघोष	अल्पप्राण
ढ	,,	,,	,,	महाप्राण

त	दंत्य	स्पर्श	अघोष	अल्पप्राण
थ	,,	,,	,,	महाप्राण
द	,,	,,	संघोष	अल्पप्राण
ध	,,	,,	,,	महाप्राण
प	द्वयोष्ठ्य	,,	अघोष	अल्पप्राण
फ	,,	,,	,,	महाप्राण
ब	,,	,,	संघोष	अल्पप्राण
भ	,,	,,	सघोष	महाप्राण
ङ	कंठ्य	नासिक्य	सघोष	अल्पप्राण
ञ	तालव्य	,,	,,	,,
ण	मूर्धन्य	,,	,,	,,
न	वर्त्स्य	,,	,,	,,
म	द्वयोष्ठ्य	,,	,,	,,
य	तालव्य	अर्धस्वर	,,	,,
र	वर्त्स्य	लुंठित	,,	,,
ल	वर्त्स्य	पार्शिवक	,,	,,
व	द्वयोष्ठ्य	अर्धस्वर	,,	,,
श	तालव्य	संघर्षी	अघोष	,,
स	वर्त्स्य	,,	,,	
ह	काकाल्य	,,	सघोष	महाप्राण
ड़	मूर्धन्य	उत्क्षिप्त	,,	अल्पप्राण
ढ़	,,	,,	,,	महाप्राण

2.8 खंडेतर ध्वनियाँ :

ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं :

1) खंडींय ध्वनियाँ ।

2) खंडेतर ध्वनियाँ

स्वर और व्यंजन खंडीय ध्वनियाँ हैं ।

भाषण प्रवाह में स्वर और व्यंजन एक दूसरे के बाद आते हैं ,'स्वर -व्यंजन -स्वर -व्यंजन -व्यंजन -स्वर' अर्थात् दो स्वरों के बीच एक व्यंजन और दो व्यंजनों के बीच एक स्वर आता है । स्वर और व्यजनों का यह क्रममुख- विवर के क्रमश: खुलने और बंद होने से जुड़ा हुआ है । उच्चारण अवयव तीव्रता से इन दो भिन्न स्थितियों में से गुजरते हैं । उच्चारण -प्रयत्न की ये दो भिन्न स्थितियाँ (मुखविवर के खुलने और बंद होने को) एक दूसरे को परिसीमित या खंडित करती हुई चलती हैं । इन खंडित उच्चारण स्थितियों से स्वर और व्यंजन जुड़े हुए हैं । इसलिए स्वर और व्यंजन खंडीय ध्वनियाँ कहलाते हैं । खंडीय ध्वनियों का स्वतंत्र उच्चारण किया जा सकता है । 'मोहन' शब्द में पाँच ध्वनियाँ हैं - म् - ओ -ह् -अ -न् । इस शब्द की ध्वनियों को हम खंड या अलग-अलग कर सकते हैं और उनका अध्ययन कर सकते हैं । शब्द में अर्थ द्योतित करने के लिए ध्वनियाँ एक निश्चित क्रम में आती हैं ।

खंडेतर ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ हैं जो या तो बाँटी नहीं जा सकतीं या खंडीय ध्वनियाँ की तरह क्रम में नहीं आतीं ।

खंडीय और खंडेतर ध्वनियों में अंतर :

1. खंडीय ध्वनियों का स्वतंत्र रूप से उच्चारण किया जा सकता है और इनका विभाजन किया जा सकता है । जबकि खंडेतर ध्वनियों का उच्चारण खंडीय ध्वनि के साथ ही हो सकता है । इनका विभाजन करना संभव नहीं है ।
2. खंडेतर ध्वनियों का सीधा संबंध अक्षर (Syelable) से है, इसके किसी खंड से नहीं । यह अक्षर एक या एकाधिक ध्वनियों का हो सकता है ।
3. खंडेतर ध्वनियाँ शब्द को प्रभावित करती हैं और वाक्य की पूरी परिरेखा(Contour) को भी । खंडीय ध्वनियाँ ऐसा कुछ नहीं करती । खंडेतर ध्वनियों में बलाघात आता है । अंग्रेजी शब्द के प्रथम अक्षर पर बलाघात होने से वह संज्ञा का अर्थ देता है और

द्वितीय अक्षर पर बलाघात होने से वह क्रिया का अर्थ देता है । उसी प्रकार अनुतान भी खंडेतर ध्वनि है । अनुतान को बदल कर किसी वाक्य को प्रश्नात्मक या सूचनात्मक बनाया जा सकता है ।

भाषा में अर्थाभिव्यक्ति के लिए तीन साधन है - पहला साधन है -स्वर और व्यंजन द्वारा निर्मित शब्द और व्याकरणिक कोटियों द्वारा निर्मित रूप रचना । दूसरा साधन है - शब्द क्रम । तीसरा साधन है - खंडेतर ध्वनियाँ, जो वाक्य- उच्चारण के विभिन्न तरीकों द्वारा विभिन्न मनोभावों को व्यक्त कर सकती हैं ।

खंडेतर ध्वनियों के अंतर्गत बलाघात (Stress) तान(Tone) अनुतान (intonation) संहिता (Juncture) दीर्घता और द्वित्व ।

बलाघात – ध्वनियों का उच्चारण करते समय वायुदाव फेफड़ों के कारण या स्वरतंत्रियों के कारण या दोनों के कारण उत्पन्न होता है । वायुदाव जितना तीव्र होगा, ध्वनि पर जोर या बलाघात उतना तीव्र होगा । बलाघात से अंग्रेजी में व्याकरणिक कोटि बदल जाती है । (import) शब्द में (im) पर बल देने से वह शब्द संज्ञा बनता है और (port) पर बल देने से वह क्रिया का अर्थ देता है । उसी प्रकार ('present) संज्ञा है और (Pre'sent)(क्रिया) है । बलाघात को दिखाने के लिए 'ˈ' चिह्न लगाया जाता है । बलाघात शब्द के जिस अक्षर पर होता है, उससे पूर्व यह चिन्ह लगाया जाता है ।

हिंदी में बलाघात द्वारा व्याकरणिक अर्थ नहीं बदलता । केवल वाक्य की अर्थ-व्यंजना में कुछ अंतर आता है । हिंदी में वाक्य के किसी शब्द पर बलाघात होता है, जिससे अर्थ व्यंजना में थोड़ा परिवर्तन आ जाता है । 'मोहन घर जा रहा है' - इस वाक्य में 'मोहन' या 'घर' या 'जा रहा है' पर बल देकर अर्थ -व्यंजना में अंतर लाया जा सकता है । मोहन पर बल देने से अर्थ होगा -केवल मोहन घर जा रहा है । घर पर बल देने से अर्थ होगा -मोहन घर ही जा रहा है, और कहीं नहीं । जा रहा है पर बल देने से अर्थ होगा - वह जा रहा है, और कुछ नहीं करता ।

सुर – भाषा को एक ही सुर में बोला नहीं जाता । सुर का उतार -चढ़ाव स्वरतंत्रियों की आवृत्ति संख्या या कंपन-संख्या पर निर्भर है । सुर का उतार-चढ़ाव जब शब्द में काम करता है, तब उसे तान कहते हैं और जब वह वाक्य में काम करता है तब उसे अनुतान कहते हैं ।

स्वरतंत्रियाँ एक ही अनुपात से पूरे समय तक प्रकंपित हों, ऐसा नहीं होता । शब्दों के उच्चारण के शुरू में प्रकंपन प्रति सेकंड में कम हो और उच्चारण के अंतिम समय में अधिक हो, तो उसे शब्द में उठती तान (risiing tone) होता है । जब आरंभ में प्रकंपन की संख्या अधिक हो और अंतिम समय में कम हो तो उसे गिरती तान (Falling tone) कहते हैं । यदि हर समय प्रकंपन समान हो तो उसे सामान्य तान level tone कहते हैं । 'गाली' नामक भाषा में एक शब्द है - 'अयो' । इसका उच्चारण गिरती तान

से करने से अर्थ होगा -सास । उठती तान से उच्चारण करने से अर्थ होगा जीभ । जिस भाषा में तान के कारण शब्द के कोशीय अर्थ में परिवर्तन आ जाता है, उसे तान भाषा tone eanguage कहते हैं । चीनी, जापानी आदि भाषाएँ तान भाषाएँ हैं । हिंदी ऐसी नहीं है ।

अनुतान - वाक्य के उच्चारण के समय आवाज के उतार -चढ़ाव को अनुतान कहते हैं । इससे वक्ता के विभिन्न मनोभाव- इच्छा, आश्चर्य, जिज्ञासा, स्वीकारोक्ति आदि व्यक्त होते हैं । हिंदी में अनुतान का महत्व है । गोपाल गया - इस वाक्य को अवरोही अनुतान में सामान्य कथन के रूप में और आरोही अनुतान में प्रश्न के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है ।

विवृत्ति (Juncture) :

अपने कथन को बोधगम्य करने के लिए शब्दों की सीमा स्पष्ट होनी चाहिए । स्वरों, व्यंजनों या स्वराघात के बीच सीमाएँ निर्धारित न होने से भाषा में अव्यवस्था की स्थिति आ जाएगी । इस सीमा में दो ध्वनियों के बीच क्षणिक विराम लिया जाता है । इसे विवृत्ति(.Juncture) कहते हैं । विवृत्ति के कारण अर्थ भी बदल जाता है ।

हिंदी में विवृत्ति दो अक्षरों पर होती है -

1. पदबंध स्तर पर

   i) अचार के लिए सिरका लाओ ।

   मेरे सिर का दर्द अब बंद है ।

   ii) घास फिर से उग आई ।

   मैंने फिर से घास उगाई ।

   iii) यह वृक्ष जल-सा स्थिर लग रहा है ।

   यह जलसा फिर लग रहा है ।

ये सब पदबंध स्तरीय विवृति हैं ।

2. वाक्य स्तर पर :

   i) रोको, मत जाने दो ।

   रोको मत, जाने दो ।

   ii) वह गया, नहीं आया ।

   वह गया नहीं, आया ।

यहाँ विवृत्ति का स्थान बदल जाने से वाक्य के अर्थ में परिवर्तन हो गया है । इसे वाक्य स्तरीय विवृत्ति कहते हैं ।

मात्रा – मात्रा ध्वनि की उच्चारण - स्थिति की अवधि पर निर्भर है । जब किसी स्वर का उच्चारण कुछ दीर्घ समय तक किया जाता है, तब उसे दीर्घ स्वर कहा जाता है । उसी प्रकार उसी स्वर का उच्चारण कम समय तक किया जाता है तो उसे ह्रस्व स्वर कहा जाता है । हिंदी में अ, उ, इ ह्रस्व स्वर हैं । इनके दीर्घ स्वर आ, ऊ, ई दीर्घ स्वर हैं । हिंदी में दीर्घता के कारण अर्थ बदल जाता हैं ।

जैस :-

कल- काल , दिन- दीन

चल - चाल, कुल - कूल

अनुनासिकता – 'अ' से 'औ' तक हिंदी के सभी स्वरों को अनुनासिक के रूप में उच्चरित किया जा सकता है । इनके उच्चारण के समय मुखविवर और नासाविवर दोनों खुले रहते हैं । ये हैं - अँ , आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, ऐँ, ऐं, ओं, औं । ये अनुनासिक स्वर हैं । अनुनासिकता से शब्द के अर्थ बदल जाते हैं । जैसे -

सास - साँस

पूछ - पूँछ

गोद - गोंद

है - हैं

खाऊ - खाऊँ

***

चित्र 9

UNIT - III

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 विभिन्न दृष्टियों से वाक्य

3.2 वाक्य -रचना प्रक्रिया

3.3 क्रिया की प्रधानता की दृष्टि से वाक्य

3.4 संरचनात्मक इकाई के रूप में वाक्य

3.5 अर्थ की दृष्टि से वाक्य के भेद

3.6 प्रकार्य की दृष्टि से वाक्य

3.7 वाक्य -परिवर्तन

3.8 अर्थ विज्ञान : अर्थ की अवधारणा

3.9 शब्द और अर्थ का संबंध

3.10 एकार्थक शब्द

3.11 अनेकार्थक शब्द

3.12 विलोम शब्द

3.13 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

3.0 उद्देश्य :

इस इकाई के बाद आप :

वाक्य को एक अर्थपरक इकाई के रूप में विवेचन करने से वाक्य की परिभाषा होगी -

' वाक्य व्याकरणिक संरचना की वह सबसे बड़ी इकाई है, जिससे भाव या विचार पूरी तौर पर प्रकट किया जा सके ।

ब्लूमफील्ड आदि आधुनिक भाषावैज्ञानिक वाक्य को अर्थ से पृथक् एक संरचना के रूप में विवेचन करते हैं । वाक्य एक रचना है । रचना रचकों से बनता है । स्वनिमों से रूपिम (शब्द) बनता है; रूपिमों से पदबंध बनता है ; पदबंधों से उपवाक्य बनता है और उपवाक्यों से वाक्य बनता है । वाक्य भाषा की सबसे बड़ी रचना है । वह किसी का अंश नहीं बन सकता । अर्थात् 'वाक्य एक ऐसी रचना (रूप) है, जो किसी उक्ति विशेष में, अपने से बड़ी रचना का अंग या रचक नहीं बन सकती ।''

वाक्य विन्यास की दृष्टि से वाक्य में कम -से-कम दो संरचक होते हैं - उद्देश्य और विधेय । उद्देश्य वह है, जिसके बारे में कुछ कहा जाए । विधेय वह है जो उद्देश्य के बारे में कहा जाए । अत: वाक्य के स्वरूप पर विवेचन करते समय तीन बातों पर ध्यान दिया जाता है -

i) वाक्य व्याकरणिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई है

ii) वाक्य एक भाव या विचार को पूरी तौर पर व्यक्त करता है ।

iii) वाक्य में उद्देश्य और विधेय का होना जरूरी है ।

यदि वाक्य में सभी अंग विद्यमान हों, तब हम उसे पूर्णांग वाक्य कहते हैं । ऐसे वाक्य से संप्रेषण पूरा हो जाता है । कभी-कभी हम पूरा वाक्य न कहकर भी एक शब्द या पदबंध में कहते हैं और उससे संदर्भ के अनुसार अभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है । ऐसे वाक्य को अल्पांग वाक्य कहते हैं । नमस्कार कहने से अर्थ होगा कि मैं आपको नमस्कार करता हूँ । प्रश्न के उत्तर के संदर्भ में हाँ, नहीं से अभिव्यक्ति पूरी हो जाती है ।

वाक्य में पद सक्रिय इकाइयाँ हैं । मीमांसक पद और वाक्य के संबंध में दो सिद्धांत देते हैं ।

i) अभिहितान्वयवाद

ii) अन्विताभिधानवाद

अभिहितान्वयवादी पदों को महत्व देते हैं । उनकी मान्यता है कि पदों के संयोग से वाक्य बनता है । वे पदवादी कहलाते हैं ।

अन्विताभिधानवादी वाक्य को महत्व देते हैं । उनके अनुसार वाक्य को तोड़ने से पद बनते हैं । ये पदों की पृथक सत्ता स्वीकार नहीं करते । ये वाक्यवादी कहलाते हैं । भाषाविज्ञान में वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई के रूप में माना जाता है । भर्तृहरि ने भी इस प्रकार का विचार रखा है । 'वाक्पदीय' में उन्होंने लिखा है -

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्वयवा न च
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥

(जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते, उसी प्रकार पदों में वर्ण या वाक्य में पद नहीं होते ।)

भावों या विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए भाषा का उपयोग किया जाता है । यह पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य द्वारा संभव है । विचार एक अखंड प्रवाह के रूप में आगे बढ़ता है । उसी प्रवाह में वाक्य से नीचे उतरने पर अर्थ का रूप खंडित हो जाता है । अत: वाक्य ही वह इकाई है, जिससे अर्थ की प्रतीती होती है ।

अभिहितान्वयवाद के अनुसार पदों के योग से वाक्य की निस्पत्ति होती है । इसके लिए तीन बातें अपेक्षित हैं । ये हैं -

i) आकांक्षा
ii) योग्यता
iii) आसत्ति

आकांक्षा :

आकांक्षा का अर्थ है अर्थ की अपूर्णता । अर्थ की पूर्ण प्रतीती न होने तक श्रोता की आकांक्षा (अधिक जानने की इच्छा) बनी रहती है । 'मोहन' कह देने से अर्थ -बोध नहीं हो जाता । 'मोहन चिट्ठी लिखता है', कहने से श्रोता पूरी बात समझ जाता है, और जानने की इच्छा नहीं रहती । यहाँ कहने का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में आ जाने से भाषा का संप्रेषण -कार्य सफल माना जाता है । आकांक्षा की निवृत्ति हो जाती है ।

योग्यता : योग्यता का अर्थ है - पदों में परस्पर अन्वय में बाधा का अभाव । पदों के अन्वय में बाधा उत्पन्न होने की दो स्थितियाँ हो सकती हैं । क) अर्थमूलक बाधा । ख) अन्वितिमूलक बाधा ।

'पहाड़ नाचता है' वाक्य में अर्थ मूलक बाधा उत्पन्न होती है । ताला खुलती है ; लड़के दौड़ता है ; वे पढ़ता है आदि वाक्यों में क्रमश: लिंग, वचन और पुरुष विषयक बाधाएँ उत्पन्न हुई हैं । अन्वय की दृष्टि से यहाँ व्याकरणिक नियमों का अनुसरण नहीं किया गया है । इसलिए पदों में अर्थ और परस्परिक अन्वय (संबंध) का उचित प्रयोग न होने से वाक्य में योग्यता का अभाव रहता है ।

आसत्ति : आसत्ति का अर्थ है - समीपता । वाक्य के पदों को देश और काल दोनों की दृष्टियों से परस्पर पास-पास रहना चाहिए । वे दूर पड़ जाएँ तो अर्थ- बोध में बाधा उत्पन्न हो जाती है । हम 'राम' शब्द का उच्चारण करके पाँच मिनट के बाद घर और पाँच मिनट के बाद जाता है कहेंगे तो अर्थबोध नहीं होगा । यदि वाक्य में सभी आवश्यक पद तो होंगे, पर पदों में आसत्ति का क्रम नहीं रहेगा तो भी अर्थ बोध नहीं होगा । जैसे 'जाऊँगा स्कूल कल मैं ।' पद विन्यास भाषा की स्वीकृति पद्धति से होने से अर्थ स्पष्ट हो सकेगा ।

तात्पर्य वृति : तात्पर्य वृत्ति का अर्थ है - प्रसंग सापेक्षता । प्रसंग निरपेक्ष कथन , योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति की शर्तों का पालन करने पर भी व्यर्थ साबित होते हैं ।

वाक्य विज्ञान : वाक्य संरचना के विभिन्न घटकों के बीच पारस्परिक संबंध का विचार वाक्य -विज्ञान में किया जाता है ।

3.1 विभिन्न दृष्टियों से वाक्य

* वाक्य की परिभाषा जानेंगे ।
* क्रिया की प्रधानता की दृष्टि से वाक्य को समझेंगे ।
* सरचनात्मक इकाई के रूप में वाक्य को समझ सकेंगे ।
* अर्थ और प्रकार्य की दृष्टि से वाक्य -भेद समझ सकेंगे ।
* शब्द - अर्थ समझ सकेंगे ।
* एकार्थक, अनेकार्थक और विलोम शब्दों को समझ सकेंगे ।
* अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं को समझ सकेंगे ।

वाक्य भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है ।

वाक्य की परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से दी जाती हैं । वाक्य में रचना -पक्ष को महत्व दिया जाए या प्रयोजन पक्ष को । वाक्य को अर्थ को एक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाए या मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में या सामाजिक संदर्भ की एक इकाई के रूप में । वाक्य पदों से मिलकर बनता है या वाक्यों को तोड़ने से पद बनते हैं, वाक्य विज्ञान में एकाधिक उपवाक्यों से बने वाक्य की संरचना के

नियमों का अध्ययन किया जाता है या व्याकरणिक युक्तियों (पदक्रम, कारक संबंध, अन्विति, अर्थ संगति , अध्याहार) का अध्ययन किया जाता है, या सभी का महत्व है - इन बातों पर भिन्न -भिन्न दृष्टियों से विचार किया जाता है ।

3.2 वाक्य रचना प्रक्रिया :

एक वाक्य रचना करते समय हमें पाँच प्रक्रियाओं पर ध्यान देना पड़ता है । ये हैं -

चयन, शब्द क्रम, अनुतान, अन्विति और अधिशासन ।

चयन – हमारे मस्तिष्क के असंख्य शब्दों का भंडार सुरक्षित रहता है । हम प्रसंग के अनुसार शब्द चयन करते हैं । कथन में औपचारिक और अनौपचारिक स्थिति के अनुसार शब्द चयन में अंतर आता है । आयु , व्यक्ति, स्थिति , शिक्षा, मनोदशा, मनोभाव आदि तत्व शब्द-चयन को प्रभावित करते हैं । वाक्यों में शब्दों के प्रकार्य और स्थान भी निश्चित रहते हैं । हिंदी वाक्यों में पहले कर्ता आता है और अंत में क्रिया । प्रकार्य के अनुसार संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, अव्यय और क्रिया का चयन किया जाता है ।

शब्द-क्रम : वाक्य में शब्द क्रम का महत्व है । शब्द -क्रम बदल जाने से अर्थ भी बदल जाता है । जैसे - मुझे जगत को सौ रुपये देने हैं । यहाँ कर्ता -संप्रदान का स्थान बदल जाने से अर्थ बदल जाता है । साँप मेंढक खाता है । मेंढक साँप खाता है । यहाँ कर्ता-कर्म का स्थान बदल जाने से अर्थ बदल जाता है । वाक्य प्रश्नवाचक बनाना हो तो 'क्या' वाक्य के पहले और नकारात्मक वाक्य हो तो 'नहीं' प्रयोग क्रिया के पहले होना चाहिए ।

अनुतान : हिंदी में वाक्य रचना करते समय अनुतान का महत्व रहता है । लहजे या अनुतान बदलने से वाक्य में मनोभाव में परिवर्तन हो जाता है । साँप निकल आया । इस वाक्य को सामान्य प्रश्नवाचक या विस्मयसूचक वाक्य में बदल दिया जा सकता है ।

अन्विति : वाक्य में प्रत्येक अंगों को बीच एक व्याकरणिक व्यवस्था होती है । उसमें एक शब्द के अनुसार दूसरा शब्द प्रभावित होता है । यह प्रभाव लिंग, वचन, कारक आदि पर निर्भर रहता है । लड़का जाता है । लड़की जाती है (लिंग की अन्विति)

लड़का पढ़ता है । लड़के पढ़ते हैं (वचन की अन्विति)

मैं गई । आप गईं (पुरुष की अन्विति)

मैं आपको बुलाता हूँ । मैं आपको पूछता हूँ । (को -से का क्रिया पद से अन्विति)

पहला लड़का । पहली लड़की । (विशेष्य - विशेषण की अन्विति)

उसने एक केला खाया । उसने दो केले खाये । (कर्म -क्रिया की अन्विति)

मोहन ने गोपाल को देखा । मुझसे तैरा नहीं जाता (क्रिया की स्वतंत्र स्थिति - पुलिंग , एकवचन अन्य पुरुष)

उसको बुखार है । रमेश को खुशी हुई । (अनुभावक कर्ता के साथ 'को' का प्रयोग)

उसे कॉफी पीनी चाहिए । आपको दो फल खाने चाहिए थे । ('चाहिए' के संयोग से कर्ता 'को' युक्त होता है ।)

अधिशासन : जब वाक्य में एक शब्द या रूप द्वारा दूसरा शब्द या रूप निर्धारित होता है, उसे अधिशासन कहते हैं । यदि वाक्य भूतकाल में हो, पूर्णता का द्योतक हो, क्रिया सकर्मक हो तो कर्ता' ने' युक्त होगा । कर्ता 'ने' युक्त होने से कर्म के लिंग -वचन द्वारा क्रिया प्रभावित होगी, कर्ता के अनुसारनहीं । पूछना, लड़ना, कहना, बोलना, अनुरोध करना आदि क्रियाएँ आने से कर्म-'से' युक्त होगा ।

(राम ने रावण को बाण से मारा । कर्ता -कर्म -करण क्रम से आए हैं ।)

राजा ने गरीब को रुपए दिए ।

(कर्ता -संप्रदान -कर्म क्रम से आए हैं ।

3.3 क्रिया की प्रधानता की दृष्टि से वाक्य :

इन वाक्यों में क्रिया वाक्य का नियंत्रण करती है । क्रिया की आकांक्षा के अनुसार वाक्य के अनिवार्य घटकों की संख्या और स्वरूप निर्धारित होता है । क्रिया प्रधान वाक्यों को छह भागों में रखा जाता है । ये हैं -

1. **अकर्मक क्रिया का वाक्य :** जिस वाक्य में अकर्मक क्रिया आती है, उसमें दो अनिवार्य घटक आते हैं - कर्ता - और क्रिया ।

मछली तैरती है । कौवा उड़ता है ।

बंदर कूदता है । चोर भागता है ।

2. **सह अव्ययात्मक अकर्मक क्रिया का वाक्या :** ऐसे वाक्य में अर्थ की पूर्ति के लिए एक सह अव्यय (क्रिया विशेषण) की आकांक्षा रहती है ।

वह घर पर पहुँच गया

चोर गली से निकला ।

कार पेड़ से टकराई ।

तुम वहाँ ठहरो ।

3. **सकर्मक क्रिया का वाक्य :** जिस वाक्य में सकर्मक क्रिया है, उसमें तीन अनिवार्य घटक हैं - कर्ता, कर्म और क्रिया

वह पपीता खाता है । (संज्ञा कर्म के रूप में)

लड़के ने पुस्तक खरीदी (संज्ञा कर्म के रूप में)

वह मृदंग बजाना जानता है । (क्रियार्थक संज्ञा कर्म के रूप में)

उसने सोचा कि मैं आ नहीं पाऊँगा (उपवाक्य कर्म के रूप में)

4. **सह अव्ययात्मक सकर्मक क्रिया का वाक्य :** ऐसे वाक्य में अर्थ की पूर्ति के लिए सह अव्यय (क्रिया -विशेषण) की आकांक्षा रहती है ।

मैंने कलम दराज में रखी

तुम यह चिट्ठी पत्र -पेटी में डाल दो ।

5. **सहपात्रीय सकर्मक क्रिया वाक्य :** ऐसे वाक्य में अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक सहपात्र की आकांक्षा रहती है ।

राजा ने ब्राह्मण को गोदान दिया । (सहपात्र - संप्रदान कारक में)

उसने मुझसे किताब ले ली । (सहपात्र - अपादान कारक में)

मोहन ने मदन से कहा कि मैं कल नहीं आऊँगा ।

(सहपात्र - अपवाक्य के कर्म के रूप में)

6. **कर्मपूरक :** ऐसे वाक्य में अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक कर्म-पूरक की आकांक्षा रहती है ।

वह मुझे चोर लगता है ।

मैं उसे ईमानदार समझता हूँ ।

हमने गोपाल को मनिटर चुना

ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त को क्लीव मानती है ।

3.4 संरचनात्मक इकाई के रूप में वाक्य :

संरचनावादी भाषा वैज्ञानिक वाक्य को एक मूर्त रचना के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार वाक्य कुछ घटकों (शब्दों, पदबंधों, उपवाक्यों) से मिलकर बनता है । जिस प्रकार ध्वनि शब्द का अंग है, शब्द पदबंध का अंग है, पदबंध उपवाक्य का अंग है, उपवाक्य वाक्य का अंग है, उसी प्रकार वाक्य किसी का अंग नहीं होता । वाक्य अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता । अर्थात् वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है । ब्लूमफील्ड के अनुसार 'वाक्य एक ऐसी रचना है जो किसी उक्ति विशेष में अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकती ।'

शब्द – एक वाक्य है - वाह ! वह सोहन और मोहन के साथ पुराने किले में अभी पहुँचा ! इसमें पदों के रूप में जो शब्द आए हैं वे हैं -

वाह - विस्मयादि बोध अव्यय, वह - सर्वनाम, मोहन -संज्ञा, और- समुच्चायबाधक अव्यय, के साथ- संबंध बोधक, पुराने -विशेषण, किले -संज्ञा, में - परसर्ग , अभी - क्रिया विशेषण, पहुँचा - क्रिया।

पदबंध – जब एक पद या कई पद आंतरिक रूप से संगुंफित होकर एक इकाई का काम करते हैं, तब उसे पदबंध कहते हैं । पदबंध में पहला घटक अनिवार्य होता है । उसे शीर्ष कहते हैं । अन्य घटक ऐच्छिक होते हैं । उन्हें विशेषक कहते हैं । पदबंध पाँच प्रकार के होते हैं ।

1) संज्ञा पदबंध 2) सर्वनाम पदबंध
3) विशेषण पदबंध 4) क्रिया विशेषण पदबंध
5) क्रिया पदबंध

संज्ञा पदबंध : संज्ञा पदबंध संज्ञा के स्थान पर आता है । इनमें शीर्ष संज्ञा होती है । गाने वाली लड़की गाँव चली गई है । इस वाक्य में लड़की शीर्ष (अनिवार्य घटक) और गाने वाली उसका विशेषक (ऐच्छिक घटक है ।

संज्ञा पदबंध तीन प्रकार के होते हैं :

1) कर्ता पदबंध- काला घोड़ा दौड़ रहा है ।
2) कर्म पदबंध - उसने लाल कलम खरीदी ।
3) पूरक पदबंध - श्री रथ गणित शिक्षक हैं (कर्तापूरक)
मैं उन्हें महान दार्शनिक मानता हूँ (कर्मपूरक)

सर्वनाम पदबंध : इसमें शीर्ष सर्वनाम होता है और विशेषक विशेषण होता है ।

तेजी से भागता हुआ वह कहीं दूर न चला जाए ।

विशेषण पदबंध – इसमें शीर्ष विशेषण होता है । अन्य घटक विशेषक होते हैं । सबसे चतुर लड़का इनाम जीत गया ।

क्रिया विशेषणपदबंध : इसमें क्रिया विशेषण ऐच्छिक घटक होता है । यह स्थान, रीति, प्रयोजन, काल, कारण आदि को व्यक्त करता है । यह स्वतंत्र रूप से या संज्ञा तथा परसर्ग के योग से बनता है । कमरे के बाहर पिताजी बैठे हैं ।

क्रिया पदबंध : क्रिया पदबंध मुख्य क्रिया या मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया के मेल से बनता है । बच्चा नीचे गिर पड़ा ।

उपवाक्य :

रचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के हैं -

i) सरल वाक्य

ii) मिश्र वाक्य

iii) संयुक्त वाक्य

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय हो उसे सरल या साधारण वाक्य कहते हैं ।

जैसे - मदन घर जा रहा है ।

जिस वाक्य में एक मुख्य वाक्य और एक या एकाधिक आश्रित उपवाक्य हों, उसे मिश्र वाक्य कहते हैं । आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :

i) संज्ञा उपवाक्य

ii) विशेषण उपवाक्य

iii) क्रिया विशेषण उपवाक्य

संज्ञा उपवाक्य : जो उपवाक्य मुख्य वाक्य में संज्ञा के रूप में आता है, उसे संज्ञा उपवाक्य कहते हैं ।

उसने कहा कि कल बारिश हो सकती है ।

(कि कल बारिश हो सकती है - कर्म के रूप में संज्ञा उपबंध)

विशेषण उपवाक्य : जो आश्रित उपवाक्य मुख्य वाक्य में संज्ञा की विशेषता बताता है, उसे विशेषण उपवाक्य कहते हैं ।

वह लड़का आज चोरी करते हुए पकड़ा गया, जो कल चौराहे पर जादू दिखा रहा था ।

(जो ... रहा था, 'वह लड़का' की विशेषता बतावे ने विशेषण उपवाक्य है)

क्रिया विशेषण उपवाक्य : जो आश्रित उपवाक्य मुख्य वाक्य की क्रिया की विशेषता बताता है, उसे क्रिया विशेषण उपवाक्य कहते हैं । ऐसे उपवाक्यों में जब, ज्यों ही, जहाँ, जैसा , जितना, क्योंकि, ताकि, अगर, यद्यपि आदि शब्द आते हैं । जब घंटी बजी, तब प्रार्थना शुरू हुई । (कालवाचक क्रिया विशेषण पदबंध)

मैं वहाँ नहीं जाऊँगा, क्योंकि मुसे बुलाया नहीं गया है ।

(कारणवाचक क्रिया विशेषण पदबंध)

वे स्थान पवित्र हो गए, जहाँ -जहाँ संत के पांव पड़े ।

(स्थानवाचक क्रिया विशेषण पदबंध)

संयुक्त वाक्य : जिस वाक्य में दो या दो से अधिक सरल वाक्य, या एक सरल वाक्य तथा एक मिश्र वाक्य या दो मिश्र वाक्य, संयुक्त रूप से आते हैं उस वाक्य को संयुक्त वाक्य कहते हैं ।

तुम पढ़ो और मुझे पढ़ने दो ।

वह लड़का जो कल आया था, वह लड़की जो आज आई है, दोनों मिलकर गाना गाएँगे ।

3.5 अर्थ की दृष्टि से वाक्यों के भेद :

अर्थ की दृष्टि से वाक्यों के आठ भेद होते हैं -

1) **विधानवाचक (निश्चयवाचक) –** इस प्रकार के वाक्य से किसी कार्य के होने की सूचना दी जाती है

कोयल कूकती है ।

2) **निषेधवाचक –** इस प्रकार के वाक्य से किसी कार्य के न होने की सूचना मिलती है ।

कल पाठशाला बंद नहीं होगी ।

3) **आज्ञावाचक –** इस प्रकार के वाक्य में आज्ञा, आदेश, अनुरोध, प्रार्थना, सलाह , उपदेश आदि का बोध होता है ।

तुम वहाँ जल्दी पहुँचो ।

आप कृपया मेरी मदद कर दें ।

4) **प्रश्नवाचक –** इस प्रकार के वाक्य से प्रश्न का बोध होता है ।

कौन जा रहा है ?

5) **विस्मयवाचक –** इस प्रकार के वाक्य में हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि भाव प्रकट होते हैं ।

वाह ! यह कितना सुन्दर है ।

आह ! वह चल वसा ।

6) **संदेहवाचक –** इस प्रकार के वाक्य में संदेह या संभावना का भाव व्यक्त होता है ।

वह खा चुका होगा । संभवत: वह आता हो ।

7) **इच्छावाचक –** इस प्रकार के वाक्य में इच्छा , कल्पना, आशिष आदि का भाव प्रकट होते हैं ।

ईश्वर तुम्हारा भला करे ।

तुम्हें यश मिले ।

8) **संकेतवाचक –** इस प्रकार के वाक्य में किसी कार्य के लिए संकेत या शर्त भाव व्यक्त किया जाता है ।

अगर तुम मन लगाकर पढ़ो तो पास हो जाओ ।

यदि वर्षा समय पर होती तो फसल अच्छी होती ।

3.6 प्रकार्य की दृष्टि से वाक्य :

वाक्य में विभिन्न घटकों का प्रकार्य कारक-कोटियों द्वारा अभिव्यक्त होता है । संज्ञा या सर्वनाम शब्द के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के अन्य शब्द/शब्दों के साथ सूचित या प्रकट होता है, उसे कारक कहते हैं । हिंदी में कारक आठ हैं । प्रत्येक कारक के लिए अलग -अलग कारक चिह्न (परसर्ग) प्रयुक्त होते हैं ।

कारकों के नाम	कारक चिन्ह
1. कर्ता	ने, को, से, के
2. कर्म	को, से
3. करण	से, के द्वारा
4. संप्रदान	को, के लिए

5.	अपादान	से
6.	संबंध	का, के, की, रा, रे, री, ना, ने नी
7.	अधिकरण	में, पर
7.	संबोधन	हे, अरे, जी

कर्ता – (क्रिया का करने वाला) लड़का खेलता है ।

कर्म – (जिस पर क्रिया का प्रभाव या फल पड़े) लड़का आम खाता है ।

करण – (जिस साधन से क्रिया हो)वह कलम से लिखता है ।

संप्रदान – (जिसकी हित-पूर्ति क्रिया से हो) उसने रमेश को दो सौ रुपये दिए ।

अपादान –(जिससे अलगााव हो) हिमालय से गंगा निकली है ।

संबंध – (दो पदों का संबंध अभिव्यक्त होता है) श्रीराम के भाई लक्ष्मण ने परशुराम से कटुवचन कहे ।

अधिकरण – (क्रिया -संचालन का आधार) मेज पर किताब है ।

संबोधन –(किसी को पुकारने का बोध होता है) अरे माहन ! जल्दी जाओ ।

3.7 वाक्य परिवर्तन :

रूपांतरण वैयाकरणों का मानना है कि आधारभूत(मूल) वाक्यों पर कुछ विशिष्ट नियम लागू करने अनेक प्रकार के संदर्भ संगत वाक्य बनाए जा सकते हैं । जैसे -

1. कमला गांव जा रही है ।

   - क्या कमला गांव जा रही है ? (प्रश्नवाचक रूपांतरण)

2. उसने सारी मिठाइयाँ खा लीं ।

   उसने सारी मिठाइयाँ नहीं खायीं । (नकारात्मक रूपांतरण)

3. लड़के अंदर गए ।

   - लड़को ! अन्दर आओ । (आज्ञार्थक रूपांतरण)

4. लीला गीत गा रही है

   - लीला गीत गा सकती है (सक- रूपांतरण)

5. अध्यक्ष ने सूचना दी ।

   - सूचना दी गई । (कर्मवाच्य रूपांतरण)

6. मैं कड़ी धूप में चल नहीं सकता ।

   - मुझसे कड़ी धूप में चला नहीं जाता ।(भाववाच्य रूपांतरण)

7. कल बारिश होगी ।

   - संभवत: कल बारिश हो । (संभावनार्थक रूपांतरण)

8. मैं जोर से दौड़ कर वहाँ पहुँचा

   - मैं जोर से दौड़ा और वहाँ पहुँचा । (संयुक्तवाक्य रूपांतरण)

9. उसने अपने को स्वस्थ बताया ।

   - उसने बताया कि मैं स्वस्थ हूँ । (मिश्र वाक्य रूपांतरण)

10. वह बहुत क्रूर है

    - वह इतना क्रूर है ! (विस्मयादि बोधक वाक्य में रूपांतरण)

11. उसने कहा -मुझे कलम चाहिए

    - उसने कहा कि मुझे कलम चाहिए । (परोक्ष उक्ति में वाक्य रूपांतरण)

3.8 अर्थ की अवधारणा (अर्थ विज्ञान)

सार्थकता भाषा का लक्षण है । अर्थ द्योतित न कर पाने वाली भाषा भार-स्वरूप है । अर्थ के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यास्क ने कहा है कि जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईंधन प्रज्वलित नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना अर्थ समझे जो शब्द दुहराया जाता है ,वह कभी अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं कर सकता ।

यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्दते ।

अनग्नाविव शुष्कैंधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् । निज्ञ क्त : 1.18

अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए शब्द माध्यम है । अर्थ को जानने के लिए दो शब्द -'रूप' और 'नाम' को जानना चाहिए । हम संसार में जितनी वस्तुएँ या प्राणियों को देखते हैं, उनकी अलग-अलग सत्ता होती है । इस सत्ता के लिए हम 'रूप' शब्द का प्रयोग करते हैं । इस मूर्त सत्ता -रूपों को हम कोई न कोई नाम देकर पुकारते हैं । 'घोड़ा' प्राणी रूप के लिए घोड़ा 'शब्द' का प्रयोग किया जाता है । 'घोड़ा' देखकर हमें ' घोड़ा' शब्द याद आ जाता है या घोड़ा शब्द सुनते ही हमारे सामने 'घोड़ा' रूप

साकार हो जाता है । ऐसे साहचर्य बोध से रूप और नाम के बीच जो संबंध स्थापित हो जाता है, उसे अर्थ कहते हैं । रूप वाच्य है और नाम वाचक है । वाचक -वाच्य संबंध का नाम 'अर्थ' है ।

अर्थ ज्ञान कैसे होता है :

शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं । प्रतीति प्रत्यय या ज्ञान भाषा का मानसिक पक्ष है । मन में विचार उठते हैं । वक्ता भाषा द्वारा उन्हें श्रोता तक प्रेषित करता है । श्रोता उन्हें कान से सुनता है तो उसके मन में उनके अर्थों की प्रतीति होती है । भाषा का उद्‌गम और अर्थ ज्ञान रूपी परिणति दोनों मानसिक पक्ष हैं ।

अर्थ की प्रतीति दो प्रकार की होती है ।

i) आत्म -प्रत्यक्ष (आत्म अनुभव)

ii) पर प्रत्यक्ष (पर - अनुभव)

1) **आत्म -प्रत्यक्ष -** स्वयं किसी वस्तु को अपनी आँखों से देखने या अनुभव करने को आत्म -प्रत्यक्ष कहते हैं । घोड़ा, पेड़, पहाड़ को देखकर या नीबू, संतरे का रस चखकर जो प्रत्यक्षीकरण होता है वह आत्म- प्रत्यक्ष है । आत्म- प्रत्यक्ष द्वारा उत्पन्न प्रतीति अधिक स्पष्ट, स्थायी और प्रामाणिक होता है । आत्म- प्रत्यक्ष के दो भेद हैं -

क) बाह्य इन्द्रिय जन्य

ख) अन्तरिन्द्रिय जन्य

आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा द्वारा क्रमश: देखकर, सूंघकर, सुनकर, छूकर और चखकर मूर्त वस्तुओं का जो ज्ञान या अनुभव प्राप्त किया जाता है वह बाह्य इन्द्रिय जन्य ज्ञान या अनुभव है । अन्तरिन्द्रिय अन्त:करण या मन है । दु:ख , क्रोध, भूख, क्षोभ आदि अमूर्त वस्तुओं का अनुभव मन द्वारा होता है ।

2) **पर-प्रत्यक्ष -** पर या दूसरों द्वारा प्रत्यक्ष हुआ ज्ञान हम स्वीकार कर लेते हैं । हिमालय को स्वयं न देखने पर भी दूसरों के देखने को प्रमाण मानकर हम स्वीकार कर लेते हैं । पर प्रत्यक्ष में वेद, शास्त्र आप्तवाक्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान सब आते हैं ।

3.9 शब्द और अर्थ का संबंध :

'गाय' कहने से 'गाय' पशु का अर्थ लिया जाता है । 'घोड़े' का नहीं । भाषा में शबर सार्थक होते हैं । वह शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का बोध कराता है या अर्थ को संकेतित करता है । यह संकेत यादृच्छिक होता है । समाज द्वारा स्वीकृत होता है । एक ही शब्द (या ध्वनि समूह) का अर्थ भाषा भेद से बदल जाता है । गो का अर्थ अंग्रेजी में जाना है तो संस्कृत में गाय है । ध्वनि समूह से वस्तु के बोध या शब्द से अर्थ के बोध की प्रक्रिया को शक्ति ग्रह या संकेतग्रह कहा जाता है । यह संकेतग्रह लोक -व्यवहार एवं अनुभव से होता है ।

आचार्य जगदीश ने 'शब्दशक्ति प्रकाशिका' में संकेतग्रह या अर्थ ज्ञान के आठ साधन माने हैं -

शक्तिग्रह व्याकरणोपमान कोशाप्तवाक्याद्,

व्यवहारतश्च, वाक्यस्य शेषात् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यत: सिद्धपदस्य वृद्धव्दा:

1. व्याकरण, 2. उपमान, 3. कोश, 4. आप्तावाक्य, 5.व्यवहार, 6. वाक्यशेष (प्रकरण), 7. विवृति (विवरण, व्याख्या), 8. प्रसिद्ध पद का सान्निद्धय

व्याकरण – शब्दों के अर्थ जानने के लिए व्याकरण की सहायता ली जाती है । व्याकरण से प्रकृति- प्रत्यय, शब्दरूप, समास, तद्धित, उपसर्ग, कृत् प्रत्ययों, स्त्रीलिंग प्रत्ययों आदि का बोध होता है । वासुदेव कहने से 'वसुदेव के पुत्र (वसुदेव+अ) का बोध हो जाता है । पढ़ना क्रिया का लिंग - पुरुष- वचन के भेदों से अनेक रूप हो जाते हैं । इनका अर्थबोध व्याकरण कराता है ।

उपमान – उपमान का अर्थ है सादृश्य । यदि किसी प्राणी या वस्तु को पूछने वाले के सामने प्रत्यक्ष नहीं कराया जा सकता, तब बताने वाला उसके समीप की किसी परिचित वस्तु का उल्लेख करके कहता है कि वह इसके समान है । नीलगाय को बताने के लिए कहा जाता है कि वह गाय के समान है ।

कोश – शब्दकोश मुख्यत: शब्दों के अर्थ बताता है । हम प्राय: दैनिक जीवन में काम में न आने वाले शब्दों के अर्थ याद नहीं कर पाते । उनके अर्थ हम कोश की सहायता से जान लेते हैं ।

आप्तवाक्य – यथार्थ वक्ता को 'आप्त' कहते हैं । वेद, शास्त्र, गुरु, माता-पिता आदि आप्त हैं । आप्तों को विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान रहता है या वे विषय के विशेषज्ञ होते हैं । उनकी बात मानकर हम बचपन से सारे शब्द और उनके अर्थ जानते हैं ।

व्यवहार – अर्थ बोध का व्यापक प्रमुख साधन है लोक-व्यवहार । बच्चा वयस्क लोगों से अनेक प्रकार के वाक्य सुनता है, उनकी क्रियाओं को देखता है । वह शब्दों के अर्थों का ज्ञान उनसे प्राप्त करता है । व्यक्ति जीवन भर इसी साधन से अपनी शब्दावली बढ़ाता रहता है ।

वाक्य -शेष(प्रकरण) – वाक्य में प्रयोग होने पर प्रकरण के अनुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है । रस शब्द के कई अर्थ लिए जा सकते हैं । षड रस कहने से मधुर, तिक्त, अम्ल आदि रसों का, नव रस कहने से शृंगार, हास्य, करुण आदि साहित्यिक रसों का 'रस पीजिए' कहने से शरबत का, आपकी बात में बहुत रस मिलता है' कहने से आनन्द का बोध होता है । उसी प्रकार पानी अर्थ प्रसंग के अनुसार बदलकर जल, सौंदर्य हो जाएगा । 'मुझे जल चाहिए' और 'घर जल रहा है' - इन दोनों वाक्यों में जल का अर्थ अलग -अलग है । पहले में वह वस्तु का अर्थ देता है तो दूसरे में क्रिया का अर्थ ।

कभी -कभी किसी वाक्य का अर्थ किसी अन्य वाक्य के अर्थ पर आधारित होता है । जैसे - 'अभी -अभी वाजपेयीजी ने राष्ट्रसंघ में अपना अभिभाषण रखा है । यह कदाचित पहला अवसर था कि भारत के कोई प्रधानमंत्री हिंदी में भाषण दें ।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत के प्रधानमंत्री वाजपेयीजी ने राष्ट्रसंघ में पहली बार हिंदी में भाषण दिया है ।

विवृति – विवृति का अर्थ है - विवरण या व्याख्या । ऐसे शब्द हैं जिनके अर्थ एक ही शब्द द्वारा बताया नहीं जा सकता । उनकी व्याख्या करनी पड़ती है । विवृति द्वारा शब्द के विविध पक्षों को उदाहरण, भेद-उपभेद आदि द्वारा स्पष्ट किया जाता है । पारिभाषिक, तकनीकी या दार्शनिक शब्दों को बिना व्याख्या के नहीं समझा जा सकता ।

प्रसिद्ध पद का सान्निध्य – हम वाक्य के एक -दो अज्ञात शब्दों के अर्थ ज्ञात (सिद्ध) पदों की समीपता के आधार पर पढ़ते हैं - बाग में गुलाब, बेला, चमेली, गुलशब्बो खिले हैं - तब जान जाते हैं कि गुलशब्बो भी एक फूल है । गेंहूँ, चना, जौ, मटर, करंजुआ नाम एक साथ लेने पर हम समझ जाते हैं कि करंजुआ एक अनाज है । 'बसंत में आम की डालियों में पिक' सुनते ही हम बसंत और आम की डाली शब्दों के आधार पर 'पिक' का अर्थ 'कोयल' समझ जाते हैं ।

3.10 एकार्थक शब्द :

शब्द मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं :

1. एकार्थक, 2. अनेकार्थक ।

एकार्थक -एकार्थक शब्द उसे कहते हैं , जहाँ किसी भाषा (अर्थ) में एक रूपक के लिए अनेक नाम (शब्द) प्रयुक्त होते हैं । 'घर' एक रूप है । इसके नाम अनेक हैं जैसे - गृह, गेह, निकेतन, आगार, भवन ।

चन्द्रमा एक रूप है । इसके अनेक नाम हैं । जैसे सुधाकर, चाँद, चंद्र, चंदा, रजनीकर, निशाकर आदि ।

अनेकार्थक – अनेकार्थक शब्द उसे कहते हैं, जहाँ किसी भाषा में एक नाम(शब्द) का प्रयोग अनेक रूपों के लिए होता है । घनश्याम एक रूप है । इनके दो अर्थ हैं -मेघ और कृष्ण ।

एकाअर्थ शब्द : एक अर्थ में विभिन्न शब्द प्रयुक्त होने के कारण :

1. बहुभाषिकता की स्थिति :

विभिन्न भाषा -भाषी लोग, पर्यटन, व्यापार, कला, साहित्य, राजनीति, धार्मिक, शिक्षा आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे के देश में जब जाते हैं, एक दूसरे की भाषा से प्रभावित होते हैं, तब बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है । यदि एक नए रूप(अर्थ) के लिए एक नया नाम (शब्द) दाता-भाषा से आता है तो स्थिति स्वाभाविक है । पर यदि ग्रहीता -भाषा में उसी रूप(अर्थ) के लिए नाम(शब्द) पहले से उपलब्ध हो, और दाता -भाषा से नया नाम ग्रहण करने की बाध्यता या आवश्यकता या इच्छा हो तो ऐसी स्थिति में एक रूप के लिए दो नाम चल पड़ते हैं । जैसे न्यायालय- कचहरी, विद्यालय -स्कूल, पवन- हवा, सुन्दर- खूबसूरत, किन्तु- लेकिन आदि ।

2. ऐतिहासिकता की स्थिति :

हिंदी की विकास -प्रक्रिया में संस्कृत -पालि-प्राकृत -अपभ्रंश और पुरानी हिंदी आदि भाषाओं का बहुत बड़ा योगदान है । इस प्रकार विरासत में हिंदी को बड़ी शब्द -संपदा मिली है । एक रूप(अर्थ) के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों के अलावा तत्सम के अनेक तद्भव शब्द (नाम) विकसित हुए हैं । जैसे - मुख- मुँह, पुष्प-फूल, विद्युत -बिजली, सर्प -साँप, शिक्यम् -छिंका, कृष्ण -कान्हा, पृष्ठ-पीठ, जिह्वा -जीभ, स्वप्न -सपना ।

3. विदेशी शब्दों का अनुवाद :

यद्यपि किसी भाषा में किसी रूप के लिए पहले से कोई नाम (शब्द) उपलब्ध हो, लेकिन फिर भी एक नया नाम आ जाता है । इस स्थिति में एक अर्थ को द्योतित करने वाले दो अलग-अलग शब्द व्यवहार में आ जाते हैं । equator के लिए पहले से 'विषुवद् रेखा' शब्द विद्यमान था । फिर भी एक नया शब्द भूमध्यरेखा प्रचलन में आ गया । Linguistics के लिए भाषा-विज्ञान, भाषा -शास्त्र और भाषिकी आदि नाम प्रचलित हो गए हैं ।

4. अश्लील, अमंगल परिहार के लिए :

सामाजिक दृष्टि से अश्लील और अमंगल की भावना को व्यक्त करने वाले अभिधार्थक शब्दों का प्रयोग न करके भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है । 'टट्टी करने की जगह दिशा जाना, पिशाब के लिए बच्चों को 'शू' करना सिखाना, मरने को गोलोकवासी होना, स्वर्गवास होना, देहांत होना कहने के पीछे यही भाव छिपा हुआ है ।

साहित्यिक लेखन में :

हम जिन प्राकृतिक तत्वों के संपर्क में आते हैं, उनके विभिन्न प्रकार के गुण होते हैं । विभिन्न गुणों के आधार पर उनके विभिन्न नामकरण होते हैं । चन्द्रमा के गुण और स्थिति के आधार पर उनके नाम उपलब्ध होते हैं । ये नाम बोल-चाल की भाषा की अपेक्षा साहित्यिक प्रयोगों में बहुलता से व्यवहृत होते हैं । जैसे - सितांशु, श्वेत किरणों के लिए, तमोहर (अंधेरा हटाने के कारण), रजनीश (रात से संबंधित) हिमांशु(शीतल किरणों के लिए) शशांक (बीच में खरगोश का चिह्न रहने से) सुधाशुं (अमृत का आधार होने से), कलाधर (कलाएँ घटते -बढ़ते रहने से), कुमुद(कुईं से संबंधित होने से), नक्षत्रेश (तारों का पति होने से) सिंधुद्भव (समुद्र से निकलने के कारण) शिवशेखर (शिव -मस्तक पर शोभा पाने के कारण)

यौगिक शब्द बन सकने की क्षमता रखने के कारण हिंदी में पर्यायवाची शब्द बहुलता से उपलब्ध होते हैं । जैसे बादल के लिए - जलधर, वारिवाह, पयोधर, अंबुवाह ।

छंदोबद्ध पद्य रचना करते समय एक स्थान पर एक शब्द रखना समीचीन न होने से उसकी जगह दूसरे पर्यायवाची शब्द प्रयोग करना आवश्यक होता है ।

जैसे - दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा ।

यहाँ लघु -गुरु विन्यास इस प्रकार है - ।।।ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ अंतिम पंक्ति में ।।।ऽ लघु गुरु का विन्यास आवश्यक था । इसलिए कमल शब्द का प्रयोग हो सकता था । कमलिनी यहाँ उपयुक्त शब्द है । एक ही अर्थ को द्योतित करने वाले विभिन्न शब्द भी संस्कृति की भिन्नता के काण कुछ-न-कुछ अर्थच्छाया रखते हैं । वैद्य -हकीम -डॉक्टर चिकित्सा से संबंधित होने पर भी विभिन्न चिकित्सा - पद्धतियों के विशेषज्ञों के रूप में परिचित होते हैं । स्कूल और मदरसा शब्द शिक्षा के विभिन्न भाषा -

माध्यम से संबंधित होता है ।

प्रश्न उठता है कि कौन-सा अर्थ ग्राह्य है और कौन-सा अर्थ ग्राह्य नहीं है-इस निर्णय कैसे करें ?

अर्थ निर्णय के साधन क्या हैं – इस पर आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में दस साधन गिनाए गए हैं -

वक्तृ -बोद्धव्य वाक्यानामन्य सन्निधि वाच्यायो:
प्रस्ताव देश कालानां काकोश्चेष्टादिकस्य च
वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत् सार्थसंभवा ॥

अर्थात् ये हैं - वक्ता, श्रोता, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल, काकु, चेष्टा ।

वक्ता – वक्ता के भेद से एक ही उक्ति का अर्थ भेद हो जाता है । 'शाम हो गई' - यह कहने से पुजारी के लिए अर्थ है - संध्या आरती का समय हो गया । बालक के लिए अर्थ है - खेल अब बंद करो । राही के लिए अर्थ होगा - पड़ाव पर रुक जाएँ । प्रेमी अपनी प्रेयसी से रानी संबोधन करने से यहाँ रानी का अर्थ 'प्रिया' होगा ।

बौद्धा (श्रोता) – अर्थ प्रतीती में भी श्रोता का महत्व है । बिहारी ने महाराज जयसिंह के लिए एक दोहा लिखा था -

नहिं पराग नंहि मधुर मधु नहिं विकास इहि काल ।
अली, कली ही तें बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥

इससे महाराज जयसिंह समझ गए कि नवोढ़ा पत्नी के प्रेम-जाल से मुक्त होकर राजकाज में ध्यान देना चाहिए । अन्योक्ति में कहे गए पद इस प्रकार के होते हैं ।

वाक्य –स्वतंत्र रहने पर शब्द का जो अर्थ होता है वाक्य में उस शब्द का अर्थ भी बदल जाता है । 'न' निषेधार्थक अव्यय है । पर यदि यह वाक्य कहा जाए - तुम जाओगे न । यहाँ 'न' का अर्थ विध्यर्थक है । 'अब देखता हूँ तुम कैसे जाते हो ?' यह वाक्य प्रश्नवाचक दिखाई पड़ने पर भी निषेधार्थक अर्थ देता है ।

वाच्य (वक्तव्य) – वक्ता के अभिप्राय के अनुसार वाक्य में शब्द का अर्थ बदल जाता है । यदि कहा जाए -'अच्छा हुआ पापी चला गया ।' तब वक्तव्य के वैशिष्ट्य के कारण 'चला गया' अर्थ होगा - मर गया । यह शायरी है -

खुदा सबको बचाए राह की ठण्डी हवाओं से
कि सोता रह गया मैं, काफिला मंजिल पै जा पहुँचा ॥

इसका अर्थ है - आराम करने वाला जहाँ -का-तहाँ रह जाता है । पर प्रयत्नशील व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँच जाता है ।

अन्य सन्निधि – अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में (तीसरे व्यक्ति , वक्ता -श्रोता से भिन्न) शब्द के अर्थ में अंतर पड़ जाता है । शकुंतला - दुष्यन्त के वार्त्तालाप के समय गौतमी के आ जाने से कोई नेपथ्य से संकेत देता है - 'चकवी ! अपने साथी से विदा लो । रात आ गई' ।

यहाँ चकवी(शकुंतला) को साथी (दुष्यन्त) से अलग हो जाना चाहिए, क्योंकि गौतमी(रात) आ गई है ।

प्रकरण – प्रकरण या प्रसंग से अर्थ भेद हो जाता है । प्रकरण के अनुसार 'सूर्योदय हुआ' वाक्य के भिन्न-भिन्न अर्थ होंगे -

बच्चो ! उठो !, संध्या करो, स्नान करो, काम पर जाओ आदि ।

देश और काल – स्थान और समय के अंतर से अर्थ बदल जाते हैं । एक वाक्य 'घंटी हो गई' । के अर्थ देश-काल के अंतर से अलग-अलग होंगे । परीक्षा भवन में घंटी का जो अर्थ है, स्टेशन पर वही अर्थ नहीं है ।

काकु(व्यंग्य) – काकु या वक्रोक्ति से अर्थ में अंतर आ जाता है । 'वृहस्पति पधार रहे हैं' कहने से अर्थ होगा - यह मूर्ख आ रहा है । तुमने अच्छा याद दिलाया ! इसका अर्थ है कि तुमने याद नहीं दिलाया । मैंने तुमसे कहा ? इसका अर्थ है कि मैंने तुमसे नहीं कहा । इसमें काकु का प्रयोग अलग-अलग शब्दों पर करके भिन्न-भिन्न अर्थ भी किए जा सकते हैं ।

चेष्टा – संकेत, इशारा या आंगिक अभिनय से अभिप्राय व्यक्त करने को चेष्टा कहा जाता है । 'तीन इंच का आदमी ' कहने से किसी व्यक्ति के नाटेपन का संकेत मिलता है । बिहारी के दोहे में गोपी और कृष्ण का अनुराग व्यक्त करने के लिए उनकी चेष्टा दर्शनीय है ।

'लखि गुरुजन -बिच कमल सों सीस छुवायो स्याम
हरि-सनमुख करि आरसी, हियै लगाई बाम ।
कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात
भरे भौन में करत हैं नैन नीसों सब बात ।।

भाषा का एक-एक शब्द असंख्य अर्थों का द्योतक हो सकता है । यहाँ तक कि काकु, चेष्टा, मनोभाव आदि से हाँ का अर्थ 'नहीं' और 'नहीं' का अर्थ 'हाँ' लिया जा सकता है । इस दृष्टि से संस्कृत की लोकोक्ति 'सर्वे सर्वार्थ वाचक' । (सभी शब्द सभी अर्थों का बोध करा सकते हैं) सार्थक प्रतीत होती है ।

3.11 अनेकार्थता :

शब्द मुख्यत: दो प्रकार के हैं - एकार्थ और अनेकार्थ । कुछ शब्दों का एक ही अर्थ होता है । अनेकार्थता वह रूप संबंध है, जहाँ एक नाम के द्वारा अनेक रूपों का बोध होता है । जैसे - कर का प्रयोग हाथ, टैक्स और सूर्य रश्मि के लिए होता है । हिंदी में अनेकार्थ शब्द बहुलता से उपलब्ध हैं । हमारी भाषा में विभिन्न स्रोतों से शब्द आने से कभी-कभी शब्दों में ध्वनियों की समानता उपलब्ध होती है । इस स्थिति में मूल अर्थ अलग-अलग होने से अनेकार्थता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । कभी प्रत्ययों के कारण अनेकार्थता उत्पन्न होती है । मूल भाषा से उद्‌भव भाषा में कुछ परिवर्तन हो जाने, नए शब्द बनने से भाषा में शब्दों की अनेकार्थता पाई जाती है ।

हिन्दी में शब्द स्तरीय अनेकार्थता :

क) विरासत में मिली अनेकार्थता हिन्दी संस्कृत से विकसित हुई है । मूल संस्कृत में अनेकार्थक शब्दों की बहुलता रहने से हिन्दी में उनका उपलब्ध होना स्वाभाविक है । संस्कृत में 'हरि' शब्द के अनेक अर्थ हैं - विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, यम, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य, बानर, अश्व, और सर्प आदि सारंग शब्द के भी अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं । वे हैं - मोर, साँप, मेघ, स्त्री, दीपक, आँचल आदि । 'क', 'ख' आदि वर्णों के भी कई अर्थ होते हैं । 'क' के अर्थ हैं - ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, सूर्य, पक्षी, मन, काल, आदि । ऐसे कुछ शब्दों का प्रयोग साहित्य में चमत्कार दिखाने के लिए होता है । पर सामाजिक स्तर पर भी बहुत से अनेकार्थक शब्द होते हैं । जैसे - पत्र(पत्ता, चिट्‌ठी), अंक(गिनती, गोद), कर (हाथ, किरण, मालगुजारी) पक्ष (पंख, पंद्रह दिन का समय ।

(ख) ऐतिहासिक ध्वनि प्रक्रिया परिवर्तन और आदान के ध्वन्यैक्य से उत्पन्न अनेकार्थता :

हिंदी में संस्कृत- पाली-प्राकृत - अपभ्रंश - पुरानी हिंदी से गुजरते हुए कई शब्द ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ आए हैं । ऐसे शब्द तद्‌भव शब्द कहलाते हैं । मूल शब्द तत्सम शब्द होते हैं । कभी-कभी तत्सम - तद्‌भव, तद्‌भव - तद्‌भव में ध्वनि -साम्य स्थिति आ जाने से अनेकार्थता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । जैसे -

काम - काम विकार (तत्सम), कर्म (तद्‌भव)

बेर - बदर (तद्‌भव), बेला(तद्‌भव)

नाक - स्वर्ग (तत्सम), नासिका(तद्‌भव)

कभी -कभी विदेशी भाषाओं - अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी के के शब्द आधुनिक भाषाओं बंगला, ओड़िया, मराठी, गुजराती के शब्द आ जाने से भी शब्द में ध्वन्यैक्य की स्थिति आ सकती है । जैसे - आम - आम्र(तत्सम), सामान्य (अरबी)

जरा - बार्धक्य(तत्सम), तनिक (अरबी)

पर - परन्तु(तत्सम), पंख(फारसी)

पोता -पुत्र का पुत्र(तद्भव), चूल्हा - चौका पोतने का कपड़ा

नव शब्द निर्माण से उत्पन्न अनेकार्थता :

स्वतंत्रता के बाद अब हिंदी में शब्द भंडार का विकास द्रुतगति से हो रहा है । अब वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक शब्दावली का अधिक से अधिक निर्माण हो रहा है । मंत्री शब्द का मूल संस्कृत में अर्थ था -सलाहकार, आज संदर्भ में अर्थ है - Minister

प्रत्ययों के कारण अनेकार्थता :

एक ही प्रत्यय भिन्न भिन्न अर्थों के द्योतक होते हैं । 'आई' प्रत्यय से बने शब्द धुलाई में दो अर्थ हैं - धोने की मजदूरी और धोने की क्रिया । पहाड़ी -पहाड़ पर रहने वाला, छोटा पहाड़ सम्लपुरी - सम्बलपुर निवासी, संम्बलपुर में उत्पन्न (साड़ी) । प्रेरणार्थक क्रिया 'मिलाना' के तीन अर्थ होते हैं - खाना खिलाना, कली को खिलाना, खेल -खिलाना ।

पेड़ा-बहुवचन में पेड़े - बासी पेड़ों को अलग रखो ।

पेड़ - बहुवचन में पेड़ - आम के पेड़ों की गिनती करो ।

माँग - क्रिया - अगर वे रुपये माँगते तो हम देते ।

माँग - संज्ञा - यह हमारी माँग है ।

जातिवाचक शब्द से अनेकार्थता :

अनेक जातिवाचक शब्द अपने सभी सदस्यों को इंगित करता है । फल कहने से हम संतरा, केला, आम, जामुन, कटहल, लीची आदि फलों को समझते हैं । मिठाई कहने से उसमें रसगुल्ला, गुलाब जामुन, रसमलाई, चमचम, बर्फी, जलेबी आदि अन्तर्भुक्त हो जाते हैं ।

सभंग श्लेष द्वारा भी अनेकार्थता की स्थिति उत्पन्न की जा सकती है । पीलिया - पी -लिया ।

आजमेर गए - आज मर गए । खाली - खा ली । असरकारी - असर कारी, पीतांबर - पीत अम्बर (वस्त्र)

अनेकार्थता की स्थिति में अर्थ विनिश्चय :

एक शब्द के यदि अनेक अर्थ होते हैं तब उस स्थिति में कौन-सा अर्थ ग्राह्य है, इस समस्या का समाधान करने के लिए भर्तृहरि 'वाक्यपदीय' में दो कारिकाएँ दी हैं -

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता

अर्थ : प्रकरणंलिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधि ॥

सामार्थ्य मभौचिती देशे कालोव्यक्ति : स्वरादय:

शब्दार्थस्यानव च्छेदे विशेष स्मृति हेतब: ।

अर्थात संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिंग, शब्द सान्निध्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर, शब्दार्थ का अनवच्छेद, विशेष स्मृति अनेकार्थता को वाधित करने वाले निर्णायक साधन है ।

संयोग : – अनेकार्थी शब्द के अर्थ का निर्णय करने के लिए साथ में आनेवाले अन्य शब्द का प्रयोग सहायता प्रदान करता है ।

संशंखचक्रो हरि :- में शंख -चक्र का उल्लेख होने के कारण हरि का अर्थ विष्णु है । 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं - गाय, पृथ्वी, वाणी, किरण, इंद्रिय । 'सवत्सा गौ' कहने से वत्सा के कारण गो का अर्थ गाय है ।

विप्रयोग(वियोग) : – प्रसिद्ध वस्तु - संबंध के अभाव को वियोग कहा जाता है । नग बिना सूनी मूँदरी' में मूँदरी के कारण नग के दो अर्थ - पहाड़ नगीना, में से नगीना अर्थ स्वीकार किया जाता है । यहाँ नग के अर्थ का निर्णय वियोग के आधार पर हुआ ।

साहचर्य :- प्रसिद्ध साहचर्य (साथ रहना) से अर्थ निर्णय में सहायता मिलती है । साहचर्य में दोनों शब्दों के बीच प्रकृतिगत साम्य उपलब्ध होता है । भीमार्जुन में भीम के साहचर्य से अर्जुन का अर्थ पाण्डव अर्जुन होता है न कि कार्तिवीर्य अर्जुन या अर्जुन नामक पेड़ । राम-लक्ष्मण शब्द में लक्ष्मण के सहयोग से राम का अर्थ होता है - दशरथ नन्दन राम, न परशुराम, न बलराम । उसी प्रकार राम के साहचर्य से लक्ष्मण का अर्थ है राम के छोटे भाई न दुर्योधन -पुत्र लक्ष्मण ।

विरोध : – कर्णार्जुन में अर्जुन के प्रबल विरोधी कर्ण का उल्लेख होने से अर्जुन पाण्डवों का

अर्जुन है न कि कार्तिवीर्य अर्जुन । राम-रावण कहने से राम शब्द दाशरथी का अर्थ देगा न कि परशुराम या बलराम का ।

अर्थ : – निहित अर्थ - या प्रयोजन से भी अनेकार्थता बाधित होती है । स्थाणु बंदे कहने से 'शिव की बंदना' अर्थ आता है । स्थाणु के दो अर्थ हैं - शिव और खंभा । कोई खंभे की बंदना नहीं करता । एक पद है -

सारंग ने सारंग गह्यो सारंग बोल्यो आय

जो सारंग सारंग कहै, तो सारंग निकस्यो जाय । यहाँ प्रयोजन के अनुसार सारंग के तीन अर्थ लिए जाते हैं - मोर, साँप, मेघ । पद का अर्थ है - मोर ने साँप को पकड़ा । तभी बादल गरजा । यदि मोर मेघ -मेघ कहेगा तो साँप निकल जाएगा । यहाँ सारंग गृहीत के अन्य अर्थ -स्त्री, दीपक, आँचल आदि गृहीत नहीं होते ।

प्रकरण :– प्रकरण का अर्थ है प्रसंग । प्रसंग -भेद से अर्थ भेद हो जाता है । 'मधु से दवा खा लो' - इस वाक्य में दवा का प्रसंग है तो मधु का अर्थ होगा शहद न बसंत ऋतु । प्रसंग से लक्षणामूलक अर्थ भी निकलता है । किसी के प्रति जब कहा जाता है -

वह गधा है - तब गधे का अर्थ मूर्ख लिया जाता है ।

लिंग :– लिंग का अर्थ है -चिन्ह लक्षण, पहचान, जिससे किसी विशेष अर्थ का बोध होता है । गगन में घनश्याम छाए हैं - इस वाक्य में 'छाए हैं' चिह्न द्वारा घनश्याम का अर्थ है बादल, न कि कृष्ण । मकरध्वज के दो अर्थ हैं - कामदेव और समुद्र । कुपित मकरध्वज कहने से अर्थ होगा कामदेव, न कि समुद्र - रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून ।

पानी गए न ऊबरे मोती, मानुस चून ॥

यहाँ मोती, मनुष्य , चून के लक्षण द्वारा पानी के तीन अर्थ होंगे - आभा, स्वाभिमान, जल ।

अन्यशब्द सान्निध्य : – शब्द की सन्निधि से भी अर्थ स्पष्ट हो जाता है । गांधी , नेहरू कहने से हम समझ जाते हैं कि महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू की बात की जाती है । राम जामदग्न्य कहने से राम का अर्थ होगा - परशुराम ।

औचित्य : – प्रयोगगत योग्यता को भी औचित्य कहते हैं । द्विजपंक्ति उड़ती जा रही है - में उड़ने का भाव होने से द्विज का अर्थ होगा पक्षी , न कि ब्राह्मण । वृक्ष पर पक्षधर बैठे हैं - यह कहने से वृक्ष पर बैठने का भाव होने से पक्षधर का अर्थ होगा पक्षी न कि समर्थक ।

देश : – देश का अर्थ है स्थान । चन्द्र के दो अर्थ हैं - चन्द्रमा और कपूर । चन्द्र गगन में शोभायमान है । इस वाक्य में चन्द्र का अर्थ है - चन्द्रमा । ताबुंल में चन्द्र कहने से चंद्र का अर्थ है -

कपूर । खेलन हरि निकसे ब्रजखोरी । ब्रजखोरी (ब्रज की गलियों में) ज्ञान के कारण हरि का अर्थ है - खेल ।

काल : – समय के कारण भी अर्थ -निर्णय में सहायता मिलती है । मधुमत्त कोकिल में मधु का अर्थ बसंत लिया जाएगा । न कि शहद या मदिरा । क्योंकि कोयल बसंत में ही मत्त होती है । चित्रभानु के दो अर्थ हैं- सूर्य, चन्द्रमा । निशि चित्रभानु और दिवाचित्रभानु में अर्थ क्रमश: चन्द्रमा और सूर्य लिए जाते हैं ।

व्यक्ति : – व्यक्ति का अर्थ लिंग -भेद । लिंग -भैद से शब्द के अर्थ निश्चित होते हैं । संस्कृत में मित्र : - पुंलिंग में अर्थ है - सूर्य । मित्रम् - नपुंसक लिंग में अर्थ है - दोस्त । हिंदी में टीका का प्रयोग स्त्रीलिंग में करने से अर्थ होगा - व्याख्या । पुंलिंग में प्रयोग होने से अर्थ होगा - तिलक ।

स्वर : – स्वर का तात्पर्य है स्वर का आरोह - अवरोह, जिससे अर्थ -निर्णय में सहायता मिलती है । 'अच्छा ।' इसे उदात्त स्वर से कहने से अर्थ होगा - तुम्हारी यह हिम्मत, मैं देख लूँगा । अनुदात्त प्रयोग से अर्थ होगा - हाँ, कमजोरी पकड़ी गई । स्वरित प्रयोग से अर्थ होगा - हम स्वीकृति देते हैं । एक कथा है - वृत्तासुर ने इन्द्र का वध करने के लिए एक यज्ञ किया । उसमें इन्द्रशत्रुर्वधस्व' अभिचार मंत्र का जप अन्त - उदात्त उच्चारण करना था, लेकिन उसका आदद्रय-उदात्त उच्चारण से किया गया । मंत्र गलत हो गया । इन्द्र के स्थान पर स्वयं वृत्त का विनाश हुआ ।

मोटे तौर पर अनेकार्थता की स्थिति में एक अर्थ को सुनिश्चित करने के लिए दो तरीके अपनाए जा सकता है ।

1) सहपाठीय (Co-textual)

2) प्रकरण (Cantextual)

पहली स्थिति में वाक्य के भीतर आने वाले शब्द द्वारा और दूसरी स्थिति में वाक्य के बाहर बाह्य जगत की स्थिति द्वारा अर्थ निर्णय। खाना खाने के समय सैंधव लाने का अर्थ है नमक । पर या मात्रा के समय सैंधव लाने का अर्थ है -घोड़ा ।

3.12 विलोमता :

एक शब्द का विपरीतार्थक शब्द क्या होगा । इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन किया जाता है । वे निम्न प्रकार के हैं :

1. **ध्रुवीय विलोमता : –** इसमें दो शब्द दो छोरों पर होते हैं, जैसे - जीवित और मृत । जो जीवित नहीं है उसे मृत कहा जाएगा और जो मृत नहीं है, उसे जीवित कहा जाएगा । ये विलोम

शब्द दोनों स्थितियों में से एक स्थिति के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं । इनके द्वारा न तुलना की जा सकती है या कमोबेश की धारणा दी जा सकती है । देशी -विदेशी, कुमारी-विवाहिता, देशी -विदेशी स्त्री - पुरुष, स्थावर -जंगम

2. **क्रमिकीय विलोमता : -** इसमें दो ऐसे गुणवाचक विशलेषण आते हैं, जिनमें न्यूनाधिक और तुलनात्मक स्थिति उपलब्ध होती है । जैसे भारी -हल्का- भारी, क्रूर-दयालु, ऊँचा - नीचा, सरल -कठिन, अच्छा-बुरा, सुख -दु:ख, कड़वा - मीठा, मीठा - खटट्टा , टेढ़ा -सीधा । यह तुलनात्मक विचार व्यक्तिनिष्ठ होता है । कभी-कभी स्थिति दोनों के बीच का समतुलीय हो सकता है । जैसे - कोई व्यक्ति न दु:खी हो सकता है, न सुखी ।

3. **संबंधी विलोमता : -** ऐसी संज्ञाएँ किसी संबंध से बंधी हुई रहती है । जैसे पति-पत्नी, भाई -बहन, गुरु-शिष्य, चिकित्सक - रोगी, पूर्वज - वंशज ।

4. **अनुवर्ती विलोमता : -** कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे की अनुवर्ती होती हैं । खोलने की स्थिति आती है जब पहले से कुछ बंद हो । ऐसे उदाहरण हैं - चलना -रुकना, खुलना -बंद होना, भरना -खाली करना ।

5. **मापक्रमीय विलोमता : -** क्रिया विशेषणों में ऐसी स्थिति आती है । मापक्रम (Scale) में पूर्वापर (काल, स्थान या दिशा) की स्थिति में ऐसी विलोमता देखी जाती है । जैसे - आगे -पीछे, पहले -बाद में, दाएँ - बाएँ, ऊपर -नीचे ।

विलोम शब्द बनाने के लिए कभी नकारात्मक उपसर्गों का प्रयोग किया जाता है । जैसे -इच्छा-अनिच्छा, चाल-कुचाल, घात - प्रतिघात, कानूनी - गैरकानूनी, गुण - अवगुण, उपयोग -दुरुपयोग, विश्वास -अविश्वास ।

कुछ विलोम शब्द उपसर्गों का परिवर्तन करके बताए जाते हैं । जैसे - आयात -निर्यात, उत्कर्ष -अपकर्ष, आकर्षण-विकर्षण, विपत्ति - संपत्ति, सरस-नीरस, सुमति -कुमति, साकार -निराकार ।

कुछ विलोम शब्द भिन्न शब्दों से बनते हैं । जैसे - अंधकार -प्रकाश, ऊँचा - नीचा, कोप - कृपा, अमृत - विष, हार - जीत, निंदा - स्तुति, दिन-रात, ठोस -तरल, मुख्य - गौण, मानव -दानव, खरीद-बिक्री, कटु-मधुर, कृतज्ञ -कृतघ्न, कनिष्ठ - ज्येष्ठ/वरिष्ठ आदि ।

3.13 अर्थ परिवर्तन (अर्थ विकास) की दिशाएँ :

भाषा परिवर्तनशील है । प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता रहता है । अर्थ परिवर्तन को अर्थ विकास भी कहा जाता है । इससे भाषा की जीवन्तता सुरक्षित रहती है । अर्थ का यही

निरंतर विकास भाषा का प्राण -तत्व है । यह अर्थगत विकास तीन दिशाओं में देखा जाता है -

1. संकोच (Contraction of meaning))
2. अर्थ विस्तार (Expansion of meaning)
3. अर्थादेश (Transference of meaning)

अर्थसंकोच – जब मनुष्य की दृष्टि सामान्य से विशिष्ट की ओर हो जाती है, तब अर्थ संकोच हो जाता है । 'ब्रील' का कहना है कि जैसे - जैसे किसी जाति का विकास होता जाता है वैसे -वेसे उसके दृष्टिकोण में विशेषता आती जाती है । परिणामत: अर्थसंकोचात्मक औद्भूति दिखाई पड़ने लगती है ।''

यास्क ने निरुक्त में कहा है कि शब्दों के व्युत्पत्तिपरक अर्थ बहुत विस्तृत होते हैं, आगे चलकर ये किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं । गो(चलनेवाली) गाय के अर्थ में पृथ्वी (फैलनेवाली) भूमि का अर्थ में रूढ़ हो गया है । मनुष्य (मनन करने वाला) सामान्य जन का बोध कराने लगा है ।

पहले नामकरण का आधार कोई तात्कालिक गुण या तत्व होता है । बाद में वह किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाता है । आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में स्पष्ट कर दिया है कि शब्दों की व्युत्पत्ति का आधार दूसरा है और प्रयोग का आधार दूसरा । लोक व्यवहार के आधार पर प्रयोग होता है । उसको अर्थसंकोच कहते हैं ।

अब मृग (पशु) हरिण के अर्थ में, विकार (परिवर्तन) दोष के अर्थ में, फूल (फुल्ल - खिलनेवाली वस्तु) पुष्प के अर्थ में , संध्या (प्रहरों का संधिकाल) शाम के अर्थ में, पंकज (कीचड़ से उत्पन्न) कमल के अर्थ में, सर्प(रेंगनेवाला) साँप के अर्थ में, सभ्य (सभा में बैठने योग्य) शिष्ट जन के अर्थ में, वेदना (सुखात्मक और दु:खात्मक अनुभूति) पीड़ा के अर्थ में, घृणा (दया और घृणा दोनों भाव) नफरत के अर्थ में, श्राद्ध(श्रद्धा युक्त कर्म) केवल मृतक के श्राद्ध के अर्थ में, तटस्थ(किनारों पर खड़ा) निष्पक्ष के अर्थ में, पर्वत (गाँठ वाला) पहाड़ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । ये अर्थ संकोच के उदाहरण हैं ।

अर्थ विस्तार :

जब कोई अर्थ अपनी संकीर्णता छोड़कर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, तब उसका अर्थविस्तार हो जाता है जैसे -

शब्द	पहला अर्थ	बाद का अर्थ
प्रवीण	अच्छी तरह वीण बजानेवाला	किसी भी काम में निपुण

कुशल	कुश लाने वाला	चतुर
तैल	तिल का तेल	कोई भी तेल
महाराज	शासक	शासक, ब्राह्मण, खाना पकाने वाला
कल्य	आगामी दिन	आगामी दिन तथा बीते हुए दिन
गवेषणा	गो को खोजना	कोई खोज या अनुसंधान

अर्थादेश :- अर्थादेश का अर्थ है एक अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ का आना । इस प्रक्रिया में शब्द का मूल अर्थ लुप्त हो जाता है और उसकी जगह एक नया अर्थ आ जाता है । जैसे -

शब्द	पहला अर्थ	बाद का अर्थ
असुर	देवता	दैत्य
साहस	डकैती आदि बुरे काम	दिलेरी
आकाशवाणी	देववाणी	ऑल इंडिया रेडियो
खाद्य	खाने योग्य वस्तु	खाद (उत्पन्न शब्द)उर्वरक
भद्र	सुशील	भद्दा (उत्पन्न शब्द) बुरा
मुग्ध	मूर्ख	मोहित होना
वर	श्रेष्ठ	दुल्हा
मौन	मुनि -कर्म	चुप रहना
बौद्ध	बौध धर्मावलंबी	बुद्धू(उत्पन्न शब्द)मूर्ख
पाषण्ड	एक संप्रदाय	पाखंड (उत्पन्न शब्द) ढोंगी
कर्पट	फटा वस्त्र	विकसित रूप -कपड़ा (अच्छे कपड़े के अर्थ में)

शब्द की लक्षण शक्ति से अर्थादेश हो जाते हैं । 'गधा' का 'मूर्ख' अर्थ , 'शेर' का दिलेर अर्थ, नाक का इज्जत अर्थ अर्थादेश के उदाहरण हैं ।

अर्थोत्कर्ष और अर्थापकर्ष :

अर्थ परिवर्तन के उदाहरणों पर विचार करते समय दो बातें सामने आती हैं । कुछ शब्दों के अर्थ

पहले बुरे अर्थों में प्रयुक्त होते थे, बाद में अच्छे अर्थों में प्रयुक्त होने लगे हैं और कुछ शब्द हैं जिनके अर्थ पहले अच्छे थे बाद में बुरे हो गए । इन्हें हम क्रमश: अर्थोत्कर्ष और अर्थापकर्ष कहते हैं । अर्थोत्कर्ष जिन शब्दों में हुए हैं, वे हैं - मुग्ध, साहस, कर्पट, कपड़ा गवेषणा, सभ्य आदि अर्थापकर्ष जिन शब्दों में हुआ है, वे हैं - असुर, घृणा, महाराज, भद्र, भद्दा, पंडित, पाषंड - पाखंड ।

3.14 अर्थ परिवर्त के कारण :

अर्थ- बोध का संबंध मन से है । मन गतिशील, चंचल, भावुक, संवेनशील एवं नवीनता का प्रेमी होता है । मानव के विभिन्न मनोभावों के अनुसार उच्चरित शब्दों के अर्थों में अंतर आ जाता है । यह अर्थ परिवर्तन प्रारंभिक स्तर पर व्यक्तिगत होता है और बाद में समाज द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा का अंग बन जाता है । अत: अर्थ- परिवर्तन की समस्त प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक होती है ।

भारतीय काव्य शास्त्रियों - आचार्य मम्मट, आचार्य विावनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि ने अर्थ परिवर्तन के कारणों के रूप में लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का उल्लेख किया है । अन्य भाषा के प्रभाव पर उन्होंने विचार नहीं किया था ।

पााचात्य विद्वान प्रो. टकर और मिशेल ब्रोआल ने इसका विस्तार से वर्णन किया है । डॉ. तारापुरवाला ने अपनी पुस्तक Elements of the seience of Language में प्रो. टकर के अनुसार अर्थपरिवर्तन के 12 कारण माने हैं । यहाँ अन्य अनुसंधानों को मिलाकर अर्थ परिवर्तन के 16 कारण माने गए हैं ।

1. लाक्षणिक प्रयोग :

भावों और अनुभूतियों की सुन्दर और कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा शब्दशक्ति का सहारा लिया जाता है ।

मनुष्य के अंगों के सादृश्य के आधार पर निर्जीव वस्तुओं के लिए हम नारियल की आँख, आरे के दांत, घड़े का मुँह, सुराही की गर्दन, नाव का पेट, अखबार की पीठ, चारपाई के पैर आदि प्रयोग करते हैं ।

गुण साम्य के आधार पर सुन्दर कल्याण, कटु अनुभव, मधुर संगीत, मीठी मुस्कान, कटु सत्य, नीरस भाषण , चटपटी बात, निर्जीव भाषा, सजीव अभिव्यक्ति आदि प्रयोग करते हैं । हम साहसी को सिंह, गुणग्राही को हंस, डरपोक को गीदड़, मूर्ख को उल्लू, महामूर्ख को गधा, खुशामदी को कुत्ता, भोलेभाले को गाय, कपटी को साँप, स्थूलकाय को हाथी, सुन्दर को चंद्रमा, विद्वान को वृहस्पति आदि

इस गुण-साम्य के आधार पर कहते हैं । कोई कहता है कि मैं कालिदास पर शोध कर रहा हूँ । तब इसका अर्थ होता है कि वह कालिदास की कृतियों पर शोधकार्य कर रहा है ।

2. परिवेश का परिवर्तन :

परिवेश या वातावरण में अंतर हो जाने से शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है । परिवेश भौगोलिक, सामाजिक, भौतिक और राजनीतिक हो सकते हैं ।

भौगोलिक परिवेश : – भौगोलिक परिवेश भेद के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है । उत्तर भारत में कच्चे और पके चावल के लिए एक शब्द प्रचलित है - चावल जब कि पूर्व भारत में चावल और भात दो अलग-अलग शब्द प्रचलित हैं । वेद में उष्ट्र शब्द भैंसे के अर्थ में प्रयुक्त होता था बाद में 'ऊँट' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ । यह आर्यों के स्थान परिवर्तन के कारण हुआ । । कार्न(Corn) का अर्थ इंग्लैंड में गेहूँ , स्कॉटलैंड में बाजरा और अमेरीका में मक्का है । पश्चिम में डेरा ' शब्द का प्रयोग थोड़ी देर ठहरने के लिए और पूर्व में घर के लिए प्रयुक्त होता है । ठाकुर शब्द उत्तरप्रदेश में क्षत्रिय का वाचक है, बंगाल में रसोइये का और बिहार में नाई का वाचक है । पश्चिम में 'भागना' सामान्यत: दौड़ने के अर्थ में और पूरब में जान बचाने दौड़ने के अर्थ में आता है ।

सामाजिक परिवेश : – समाज -भेद से एक ही शब्द के भिन्न -भिन्न अर्थ हो जाते हैं । 'सिस्टर शब्द का अर्थ परिवार में बहन और अस्पताल में नर्स होता है । भाई शब्द का अर्थ विभिन्न सामाजिक स्थितियों में भिन्न -भिन्न होता है । भाई शब्द का सहोदर भ्राता, साला, बहनोई, साथी, अजनबी, पुत्र, पत्नी, नौकर, दुकानदार आदि के लिए प्रयुक्त होता है । बहनजी शब्द अपनी बहन का वाचक न होकर किसी भी महिला का वाचक होता है । कोई नाश्ता कहता है, तो कोई जलपान, कोई पुस्तक कहता है तो कोई किताब, कोई ईश्वर कहता है तो कोई अल्लाह । सामाजिक स्थिति -भेद से शब्द प्रयोग में अंतर आ जाता है ।

भौतिक परिवेश भेद :– भौतिक साधनों के परिवर्तन के साथ वस्तुओं के नामों में परिवर्तन आ जाता है । हम पीतल, ताँबे, चाँदी, काँच आदि से बने पात्र विशेष को गिलास कहते हैं । शीशा धातु -विशेष का नाम है, यह दर्पण के लिए अब प्रयुक्त होता है ।

राजनीतिक परिवेश :– राजनीतिक स्थिति में अंतर आ जाने से शब्दों के अर्थों में बहुत परिवर्तन हो जाता है । पारिवारिक गृह -कलह के लिए महाभारत, दुराग्रहपूर्ण कार्य के लिए सत्याग्रह, झगड़े में मरने वाले के लिए शहीद, स्वार्थी के लिए देशभक्त' शब्द का प्रयोग होता है ।

3. शिष्टाचार और विनम्रता :

शिष्टाचार और विनम्रता किसी सभ्य समाज की रीढ़ है । भाषा से किसी व्यक्ति की शिक्षा -दीक्षा, संस्कार, अभिजात्य आदि का पता चल जाता है । विनम्रता प्रदर्शन करते समय अहंकार का परित्याग किया जाता है । अपने इष्ट का बढ़-चढ़ कर गुणगान किया जाता है । अपने को दीन, पापी, कुमति कहकर भक्त इष्ट को दीनबंधु - पतितपावन, अशरण - शरण कहता है । नौकर अपने को चरण सेवक, गुलाम , अकिंचन, नाचीज अनुचर, किंकर, और सेवक आदि कहता है । शिष्ट समाज में आइए कि जगह पधारिए 'मेरे यहाँ आइए' न कहकर मेरी कुटी पवित्र कीजिए कहा जाता है । उर्दू में विनम्रता प्रदर्शन करने के लिए अपने मकान को गरीब खाना और दूसरे के मकान को दौलतखाना कहा जाता है । किसी के अप्रत्याशित आने पर हम पूछते हैं - कैसे कृपा की ।

4. श्रवण सुखदता :

इसको अशुभ -परिहार, अमंगल निवारण सुश्राव्यता भी कहते हैं । अंग्रेजी में इसे Euphemism कहते हैं जो Eu (सुन्दर) और Phemos (ध्वनि कथन) के संयोग से बना है । इसका अर्थ है - सुन्दर ध्वनि या श्रवण -सुखद ध्वनि अशुभ, अमंगल सूचक, घृणित और पीड़ा सूचक शब्द सुनने में अप्रिय लगते हैं । इनकी जगह शुभ और सुन्दर शब्दों का प्रयोग शिष्टता का लक्षण है ।

अशुभ कार्यों और घटनाओं के लिए हम शुभ नाम का प्रयोग करते हैं । मृत्यु के लिए पंचत्व प्राप्त, स्वर्गवास , वैकुंठवास, वैधव्य के लिए चूड़ी टूटना, सिंदूर घुलना, दीपक बुझाने के लिए दीपक बढ़ाना, दुकान बंद करने के लिए दुकान बढ़ाना, अंधे के लिए सूरदास आदि कहना शिष्टता है ।

अंधविश्वास के कारण कुछ शब्दों की जगह हम अन्य शब्दों का प्रयोग करते हैं । चेचक को हम शीतला देवी , माता कहते हैं । कंजूस का नाम लेने से दिन भर भोजन न मिलने का अंधविश्वास रहने से लोग उनका नाम नहीं लेते ।

व्रीड़ावाचक शब्दों में यौन -भावना, मल -मूत्र त्याग आदि के सूचक शब्द आते हैं, जिनके लिए हम अन्य वस्तुवाचक शब्दों की सहायता लेते हैं । मलत्याग के लिए मैदान जाना, दिशा फिरना, बाथरूम जाना प्रयोग किया जाता है ।

जुगुप्साव्यंजन का घृणास्पद - शब्द भी सुरुचि के विरुद्ध हैं । ये वर्जनीय हैं । पीब पड़ना, पीब से लथपथ, कीड़े बिलबिलाना आदि शब्द घृणा पैदा करते हैं । हीनकार्य करने वालों को अलग नाम दिए जाते हैं । भंगी को जमादार, अछूत के लिए हरिजन नाम प्रचलित हुए हैं ।

5. व्यंग्य (irony) :

काव्य शास्त्र में इसे विपरीत लक्षणा कहते हैं । किसी पर व्यंग्य या आक्षेप करके जो शब्द कहे जाते हैं, वे उससे सर्वथा उलटा अर्थ बताते हैं । गोपियाँ कहती हैं - ऊधो, तुम अति चतुर सुजान । यहाँ उनके कहने का उद्देश्य है कि उद्धव अति अज्ञ और बुद्धिहीन हैं । इस प्रकार मूर्ख को वृहस्पति , झूठे को युधिष्ठिर, कृपण को कर्ण, डरपोक को सिंह, आचारहीन को धर्मात्मा, कुरूप को कामदेव, लंपट को ब्रह्मचारी, कुलक्षणा को सती व्यंग्य से कहा जाता है । आँख का अंधा नाम नयनसुख, नाच न जाने आंगन टेढ़ा आदि कहावतें भी व्यंग्यमूलक हैं ।

6. भावात्मक बल :

भावावेश या भावुकता का भी भाषा पर प्रभाव पड़ता है । अतिशय आस्वादता बताने के लिए मिठाइयों के नाम हैं - रसगुल्ला, सीताभोग, संदेश, मोतीभोग । भावोद्बोधन के लिए तोरई को रामतोरई, पवित्रता -बोध के लिए देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, विष्णु प्रयाग नाम अतिशयता के लिए प्रचंड उत्साह, भीषण गर्मी, भयंकर ठंड का प्रयोग किया जाता है । राम ! राम ! धिक्कार के लिए वाह ! वाह ! प्रशंसा के लिए प्रयुक्त होते हैं ।

7. अज्ञान और भ्रांति :

कभी -कभी लोग भाषा का कामचलाऊ ज्ञान रखने पर भी अहंकार के कारण बहुत कुछ जानने का दंभ रखते हैं । ऐसी स्थिति में अज्ञानता और भ्रांति के कारण वे गलत प्रयोग कर देते हैं । पहले असुर शब्द देव वाचक था । बाद में सुर देववाचक हो गया । 'अ' को नकारात्मक उपसर्ग मानकर राक्षस के अर्थ में 'असुर शब्द का प्रयोग होने लगा । अभिज्ञ शब्द में 'अ' को नकारात्मक मानकर लोग भिज्ञ शब्द का प्रयोग कर बैठते हैं । आक्रमणकारी के रूप में आक्रांता शब्द आजकल प्रयोग में आ चुका है । बढ़चढ़कर अनुचित बात करने वाले के लिए ऊर्दू शब्द है 'जबानदराज' । इसके सही अर्थ न जान कर वाग्मी के अर्थ में प्रयोग कर देने से श्रोता के मन में क्रोध और असंतोष उत्पन्न हो जाता है । अनुगृहीत के स्थान पर अनुग्रहीत या अनुगृहित, विद्वता के स्थान पर विद्वानता, न्यून के स्थान पर न्युन पूजास्पद के स्थान पर पूज्यास्पद लिखना अज्ञानमूलक प्रयोग हैं ।

8. शब्दार्थ की अनिश्चितता :

किसी भी भाषा में ऐसे बहुत से शब्द होते हैं जिनके अर्थ सुनिश्चित नहीं है या लोग उनका

उपयुक्त प्रयोग नहीं जानते । इस कोटि के शब्द अमूर्त भावों के द्योतक होते हैं । अनुकंपा- कृपा -दया, क्षोभ - आक्रोश -रोष, क्लेश- पीड़ा -यंत्रणा व्यथा -वेदना, आरंभ -प्रारंभ, प्रगति -विकास में स्पष्ट सीमारेखा खींचना मुश्किल है । आम, पेड़, मकान के अर्थ जितनी स्पष्टता से बताए जा सकते हैं , प्रेम, कृपा, न्याय, दया, अनुकंपा आदि के अर्थ उतनी स्पष्टता से नहीं बताए जा सकते । देश-काल-परिस्थिति भेद से लोग एक शब्द की जगह पर्यायवाची मानकर दूसरे का प्रयोग कर देते हैं ।

9. सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग :

कभी-कभी सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग प्रचलित हो जाता है । तैल का अर्थ तिल के तेल की जगह सभी प्रकार के तेलों का वाचक हो गया । 'सब्जी' हरे रंग की तरकारियों की जगह सभी तरकारियों का बोध कराती है । स्याही का प्रयोग पहले केवल काली रोशनाई के लिए प्रयुक्त होता था । अब किसी भी रंग की रोशनाई स्याही कहलाती है । जलपान का प्रयोग केवल जल 'नहीं' लघु भोजन के लिए, मजदूर का प्रयोग मजदूरों और मजदूरिनों के लिए होता है । लोमड़ी शब्द नर लोमड़ी और मादा लोमड़ी का वाचक है । पैसेवाले का प्रयोग पैसों के मालिक नहीं, धनवान का वाचक है ।

10. व्यक्ति के अनुसार शब्दों के प्रयोग (Concept) में भेद :

व्यक्तिगत शिक्षा -दीक्षा, संस्कार, जीवन-दृष्टि, चाल-चलन आदि के भेद से लोगों के मन में एक शब्द का भिन्न-भिन्न प्रत्यय उत्पन्न हो जाता है । हिन्दू, मुसलमान, इसाई, बौद्ध, आदि लोगों केमन में धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, खाद्य-अखाद्य की परिभाषा संस्कार के कारण अलग -अलग हो जाती है । हिन्दू गोमांस नहीं खाते तो मुसलमान सूअर का मांस नहीं खाते । लोकतंत्र का अर्थ अमेरिका में अलग है तो रूस में अलग । राष्ट्रपति कहने से विभिन्न राष्ट्रों के लोग अपने -अपने राष्ट्र के राष्ट्रपति का नाम याद कर लेंगे । 'सभा' कहने से बनारस के लोग काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम लेंगे तो मद्रास के लोग दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का नाम तत्काल याद कर लेंगे । काफिर का मूल अर्थ है - ईश्वर को न मानने वाला । बाद में मुसलमानों के लिए यह शब्द 'हिन्दू' का वाचक हो गया ।

11. शब्दार्थ के एक तत्व की प्रधानता :

कभी-कभी शब्द के किसी एक तत्व की प्रधानता को देखकर उसीके अनुसार और एक शब्द चल पड़ता है । पहले पुलिस के लिए लाल पगड़ी शब्द इस प्रकार से चल पड़ा था । कांग्रेस का वाचक भी गांधी टोपी था । 'वर्ण' के आधार पर सोने का नाम सुवर्ण हुआ । स्त्री में नैसर्गिक वक्रता होने से

उसका एक नाम 'वामा' है । कम्युनिस्टों के लिए लाल झंडा शब्द चलता है । गैस कहने से हम सामान्यत: जलनेवाली गैस को ही समझते हैं । इस स्थिति में वस्तु विशेष जातीय वर्ग की प्रतीक बन जाती है ।

12. साहचर्य के कारण गौण अर्थ की प्रमुखता :

साहचर्य आदि कारणों से गौण अर्थ का मुख्य अर्थ में प्रयोग होने लगता है । तम्बाखू पहले विदेश से सूरत बंदरगाह में उतरा था । इस साहचर्य के कारण उसका नाम सूरती पड़ा । केसर कश्मीर में उत्पन्न होता है । इसलिए इसे 'काश्मीर' कहा जाता है । कंबोज से संबंधित होने से उड़द का नाम 'काम्बोजी' पड़ गया है । 'सिंधु से संबंधित होने के कारण नमक का नाम सैंधव है । सांभर झील से उत्पन्न होने से नाम पड़ा सांभर नमक । मदिरा का विशेष पात्र होने के कारण बोतल कहने से लोग शराब की बोतल को ही समझ लेते हैं । सुंघनी बेचने के कारण जयशंकर प्रसाद के पूर्वज सुंघनी 'साहू' के नाम से प्रसिद्ध थे । सरौली में उत्पन्न आम बहुत मीठे होते हैं । वहाँ के आम का नाम 'सरौली' पड़ गया है । ये सब संसर्ग या साहचर्य के प्रभाव से होता है ।

13. एक शब्द के भिन्न रूपों का विभिन्न अर्थों में प्रयोग :

भाषाओं के विकास के क्रम में एक शब्द के अनेक रूप प्रचलन में आते हैं । मूल तत्सम शब्द एक अर्थ का वाचक होता है तो उससे उत्पन्न तद्भव शब्द भिन्न अर्थ का वाचक हो जाता है । जैसे - साद्य -खाद, श्रेष्ठ - सेठ, क्षीर - खीर, स्तन - थन (केवल पशुओं का) । तत्सम शब्द है - पत्र, उससे उत्पन्न शब्द हैं - पत्ता, पत्ती, पाती, पत्तर, पत्तल । इनके अर्थों में भेद है । कुछ तद्भव शब्द तत्सम शब्द की तुलना में निकृष्ट अर्थ द्योतित करते हैं । जैसे - ब्राह्मण (शिक्षित) - बाह्मन (अशिक्षित), चतुर्वेदी (वेदज्ञ) - चौबे (जाति से) पुंगव (श्रेष्ठ) - पोंगा (गँवार पंडित), वज्रवटु (घोर ब्रह्मचारी) - बजरबट्टू (महामूर्ख)

14. समास, उपसर्ग, लिंग-भेद :

समस्त पद और असमस्त शब्दों के अर्थों में अंतर आ जाता है । जैसे कृष्णसर्प: (सर्पविशेष) काला साँप (कोई भी काला साँप), पति -गृह (ससुराल) गृहपति (गृहस्वामी), पंडित राज (पंडितों में श्रेष्ठ), राजपंडित (राजा का पंडित) । कविराज(वैद्य), राज कवि(राजा का कवि)

उपसर्गों के कारण अर्थों में अंतर आ जाता है । जैसे हार -आहार -विहार, प्रहार - उपहार, संहार

- परिहार, योग - वियोग, संयोग - प्रयोग, अनुयोग - नियोग, आकार -विकार, प्रकार - संस्कार - प्राकार, लिंग भेद से भी अर्थभेद हो जाता है । जैसे - काला -काली (दुर्गा), कृष्ण -कृष्णा (द्रौपदी), शैल-पर्वत - शैला-पार्वती, दक्षिण - दक्षिणा (दान)

15. अन्य भाषाओं के शब्द :

कुछ स्थानों पर जब किसी भाषा से शब्द लिए जाते हैं, तब वे मूल अर्थ छोड़कर नए अर्थ प्रदान करते हैं । फारसी 'मुर्ग' शब्द पक्षी वाचक है । हिन्दी में अर्थ 'मुर्गा' है । लॉर्ड से बना शब्द लाट (लाट -साहब) शान-शौकत का बोध कराता है । बुद्ध (संस्कृत में गौतम बुद्ध) फारसी में बूत (मूर्ति) बन गया । अर्बन (संस्कृत में घोड़ा) अरब देश का वाचक हो गया । नास्ति, नाभूत् (संस्कृत में - न है, न था) अवेस्ता में बन गया नेस्त नाबूद ' (सर्वनाश) बन गया । संस्कृत का मृग (पशु) फारसी में मुर्ग(पक्षी) हो गया । वैदिक जनि(स्त्री) अंग्रेजी में क्वीन(रानी) है । संस्कृत का वाटिका (बगीचा) शब्द बंगाल में बाड़ी(घर) हो गया । संस्कृत में बाणभट्ट की कृति 'कादंबरी' मराठी में उपन्यास वाचक हो गया ।

16. अन्य भाषाओं का प्रभाव :

सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा एक भाषा अन्य भाषा के शब्दों को ग्रहण कर लेती है । कभी-कभी अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है । बंगला के प्रभाव से हिंदी में उपन्यास शब्द बना । समारोह (चढ़ना) का शुभ आयोजन अर्थ हो गया । समाचार (शुभ आचरण) का अर्थ वार्ता हो गया ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अर्थ -परिवर्तन का कोई एक और सुनिश्चित कारण नहीं है । इसके लिए मानसिक और भौतिक तथा आंतरिक और बाह्य अनेक कारण सम्मिलित रूप से काम करते हैं ।

***

यूनिट -1

1. भाषा की परिभाषाएँ देकर भाषा के महत्व पर प्रकाश डालिए
2. भाषा की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए ।
3. भाषा के विविध रूपों की चर्चा कीजिए ।
4. भाषा -विकास के क्या -क्या कारण हो सकते हैं, उन पर प्रकाश डालिए ।

यूनिट -II

1. वाग्यंत्र का सविस्तार परिचय दीजिए ।
2. स्वर ध्वनि किसे कहते हैं ? हिंदी स्वर ध्वनियों का वर्णन कीजिए ।
3. प्रयत्न के आधार पर हिंदी व्यजनों का वर्णन कीजिए ।
4. स्थान के आधार पर हिंदी व्यंजनों का वर्णन कीजिए ।
5. संसंक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

   क) अनुनासिकता

   ख) स्वरतंत्रियाँ

   ग) हिंदी व्यंजनों के अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि लिपि में लेखन

यूनिट -III

1. भाषा की विभिन्न परिभाषाएँ देकर उसके महत्व पर प्रकाश डालिए ।
2. वाक्य कितने प्रकार के होते हैं ? विवेचन कीजिए ।
3. अर्थ की अवधारणा स्पष्ट करते हुए शब्द और अर्थ के संबंध पर प्रकाश डालिए ।
4. अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं पर चर्चा कीजिए ।
5. अर्थ परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।
5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

   क) एकार्थक शब्द

   ख) अनेकार्थक शब्द

   ग) विलोम शब्द